जुलाई-सितंबर
July-September

वर्ष 29
अंक : 116

2023

ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

मानव अधिकार विशेषांक – 2

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव
अतिथि संपादक
डॉ. शीतल प्रसाद मीना

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-29/2022-2023

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272, **फ़ोन :** 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 29, मानव अधिकार विशेषांक – 2, अंक : 116, (जुलाई-सितंबर, 2023)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

अतिथि संपादक : डॉ. शीतल प्रसाद मीना

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
6. डॉ. सुरेंद्र यादव : निदेशक, स्केल विधि महाविद्यालय, अलवर

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
10. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
11. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
12. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
13. डॉ. उमाकांत ख़ुबालकर (सदस्य)
14. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए	संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए	संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 116 में

1. हमारे लेखक -- 206

2. संपादकीय -- 207

3. भारत में बच्चों के मानव अधिकारों का संरक्षण : क़ानून और चुनौतियाँ / **डॉ. नीति निपुण सक्सेना** -- 211

4. समलैंगिक शादियों पर सुप्रीम मंथन : नैतिकता, विवाह और क़ानून / **प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह** -- 223

5. मानव अधिकार एवं दिव्यांग अधिकारों की आवश्यकता / **रीना यादव** -- 231

6. सशस्त्र बल अधिनियम (अफ़्स्पा) एवं मानव अधिकार / **संतोष बंसल** -- 237

7. भोजन का मानव अधिकार एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा : एक आकलन / **महिमा श्रीवास्तव एवं प्रो. प्रीती सक्सेना** -- 241

8. यूथनेशिया एवं मानव अधिकार / **नेहा राठी** -- 251

9. स्त्रियों के मानव अधिकार : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन / **डॉ. सुमन शर्मा** -- 259

10. पर्यावरण और मानव अधिकार : एक अवलोकन / **डॉ. आलोक चांटिया** -- 263

11. साहित्य, समाज और मानव अधिकार : (संदर्भ : महिला सशक्तिकरण) / **मीनाक्षी जोशी** -- 269

12. मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में कारपोरेट सामाजिक दायित्व / **डॉ. विपिन कुमार सिंह** -- 272

13. मानव अधिकार और अल्पसंख्यक : भारत में चुनौतियाँ / **डॉ. ज्योत्सना श्रोत्रिय** -- 280

14. भारत में न्यायपालिका और मानव अधिकार / **राधा बिश्नोई** -- 286

15. भारत में शिक्षा का अधिकार और मानव अधिकारों का विविध विश्लेषण एवं न्यायपालिका की भूमिका / **डॉ. दुष्यंत कुमार एवं बृजेश कँवर** -- 290

16. कार्यकारी महिलाओं में भूमिका द्वंद : समाजशास्त्रीय अध्ययन / **डॉ. मीनाक्षी मीना** -- 296

हमारे लेखक

डॉ. नीति निपुण सक्सेना : विभागाध्यक्ष, विधि और विधि अध्ययन संस्थान, सेज विश्वविद्यालय, इंदौर

प्रो. राकेश कुमार सिंह : प्रोफेसर और पूर्व प्रमुख और डीन, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

रीना यादव : द्वारा हुक्मीचंद जी माली, मकान नंबर 12, गली नंबर 2, माली कॉलोनी, उदयपुर राजस्थान **मोबाइल :** 8824002252 **ईमेल :** reena1982yadav@gmail.com

श्रीमती संतोष बंसल : ए-1/7, मियाँवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110087, **मोबाइल :** 8860022613

महिमा श्रीवास्तव : एल.एल.एम. (मानव अधिकार) चतुर्थ सेमेस्टर, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो. प्रीती सक्सेना : पूर्व-विभागाध्यक्ष, मानव अधिकार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. सुमन शर्मा : अनुवादक, मकान नं. 473-सी, गली नं. 18, शिव कुंज, संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली-110084, **मोबाइल :** 7532892661, **ई-मेल :** sumankumari10191@gmail.com

डॉ आलोक चांटिया : मानव शास्त्री, ए.आई.आर.ओ. एनडीएफ, लखनऊ

मीनाक्षी जोशी : प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं पूर्व प्राचार्य, भंडारा (महाराष्ट्र)
मोबाइल : 9823315230

डॉ. विपिन कुमार सिंह : असिस्टेंट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय/कॉलेज, प्रयाग सिटीजन लॉ कॉलेज, 79के/7 पुरादलेल, प्रयागराज-211006, उत्तर प्रदेश
मोबाइल : 9415172160, **ई-मेल :** vipsinghpp@gmail.com

डॉ. ज्योत्सना श्रोत्रिय : (असिस्टेंट प्रोफेसर) महावीर लॉ कॉलेज, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 180, महात्मा गांधी नगर, डीसीएम, अजमेर रोड, जयपुर-302019
ई-मेल : jyo.shro@gmail.com, **मोबाइल :** 91+8302766668

राधा बिश्नोई : असिस्टेंट प्रोफेसर, सज्जन लॉ कॉलेज, पाली, राजस्थान
ई-मेल : 29radhabishnoi@gmail.com

डॉ. दुष्यंत कुमार एवं बृजेश कँवर : सहायक आचार्य, विधि विभाग, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर

डॉ. मीनाक्षी मीना : सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

संपादकीय

जून, 2023 में प्रधानमंत्री मोदी जी की अमेरिका की शानदार सरकारी यात्रा के दौरान बहुत कुछ अच्छा ही अच्छा हुआ परंतु इस शानदार और भव्यतम यात्रा के दौरान एक नज़र बट्टू भी सामने आया। जैसे कि भारत के प्रति काफी समय से यह झूठा प्रचार किया जा रहा है कि भारत में अल्पसंख्यक सुरक्षित नहीं है, वह भयभीत हैं और भारत में उनके मानव अधिकारों का हनन हो रहा है, प्रधानमंत्री की इस यात्रा के अवसर पर अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने एक साक्षात्कार दिया जिसमें उन्होंने कहा कि अगर मैं इस समय राष्ट्रपति होता तो मोदी जी के साथ भारत के अल्पसंख्यकों के मानव अधिकारों के उल्लंघन का प्रश्न अवश्य उठाता। दूसरे, प्रधानमंत्री मोदी ने अमेरिका की संसद में भाषण दिया तो वहाँ के दो मुस्लिम प्रतिनिधियों ने इस भाषण का बहिष्कार इसी आधार पर किया। साथ ही सुना है कुछ सांसदों ने राष्ट्रपति जो बाईडेन को एक पत्र लिखकर कहा है कि वह इस यात्रा के दौरान मोदी जी के साथ भारत में अल्पसंख्यकों के मानव अधिकारों के उल्लंघन का प्रश्न उठाएँ।

यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री मोदी और राष्ट्रपति जो बाइडेन की एक सांझा प्रेस कॉन्फ्रेंस में प्रधानमंत्री मोदी जी से एक पत्रकार ने प्रश्न पूछ लिया कि लोग कहते हैं कि भारत में अल्पसंख्यकों के मानव अधिकारों का हनन हो रहा है और भारत में मुसलमान सुरक्षित नहीं है, इस प्रश्न का प्रधानमंत्री श्री मोदी जी ने ऐसा जबरदस्त और कमाल का जवाब दिया कि सब की बोलती बंद कर दी। उन्होंने कहा कि ''आप लोगों की बात कर रहे हैं, लोग तो यह कहते हैं कि भारत में लोकतंत्र जीवंत है। लोकतंत्र हमारे डीएनए में है, हमारी रगों में है, हम लोकतंत्र को जीते हैं। हमारे यहाँ जाति, पंथ या धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव का सवाल ही नहीं है। हमारे पूर्वजों ने हमारे संविधान को शब्दों में ढाला है और हमारा देश संविधान से चलता है।'' प्रधानमंत्री मोदी जी ने यह भी कहा कि जैसे राष्ट्रपति जो बाइडेन महोदय ने कहा है कि लोकतंत्र भारत और अमेरिका के डीएनए में है। उन्होंने यह भी कहा कि हमारी सरकार सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सब के प्रयास के साथ चलती है और भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था नैतिक सिद्धांतों पर आधारित है। जहाँ मानव अधिकार सुनिश्चित नहीं, वह लोकतंत्र हो ही नहीं सकता और भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। सरकार की योजनाओं का लाभ सभी को मिलता है और उसमें किसी के साथ धर्म या पंथ के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है।

वैसे ऐसा पहली बार नहीं हुआ। भारत में मानव अधिकारों के उल्लंघन को लेकर उस पर आरोप लगाये जाते हैं। कभी यह आरोप कश्मीर को लेकर अथवा किसी और मुद्दे को लेकर लगायें जाते रहे हैं जबकि भारत के बारे में वास्तविकता यह है कि भारत में आरंभ से ही मानव अधिकारों के कार्यान्वयन पर ज़ोर दिया जाता रहा है। पहली बात तो यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसंबर, 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में जो मानव अधिकार शामिल किए थे वे सभी मानव अधिकार उस समय निर्मित हो रहे भारत के संविधान में शामिल कर लिए गए थे। भारत के संविधान में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को भारत के संविधान के अध्याय-3 में मूल अधिकारों में और सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मानव अधिकारों को भारत के संविधान के अध्याय-4 में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में शामिल कर लिया गया है। मूल अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में न्यायपालिका का द्वार खटखटाना अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण मूल अधिकार है। भारत के संविधान के चौथे अध्याय में सम्मिलित किए गए राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के प्रवर्तन के लिए चाहे सीधे न्यायालय में ना जाया जा सकता हो परंतु यह नीति निदेशक तत्त्व राज्य की नीतियों में मूलभूत हैं और महत्त्वपूर्ण हैं।

दूसरा, यहाँ की न्यायपालिका मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए हमेशा क्रियाशील रही है और उसने तो राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों में सम्मिलित कई मानव अधिकारों को मूल अधिकारों की श्रेणी में ला खड़ा किया है बल्कि शिक्षा का अधिकार जो आरंभ में भारत के संविधान में राज्य के एक नीति निदेशक तत्त्व के रूप में शामिल किया गया था अब वह भारत के संविधान में मूल अधिकार के रूप में शामिल कर लिया गया है जिसके लिए भारत के संविधान में संशोधन किया गया था।

भारत हमेशा संयुक्त राष्ट्र संघ के हर प्रकार के मानव अधिकारों संबंधी निर्देशों का भी पालन करता आ रहा है। जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों के दो अभिसमय, नागरिक और राजनीतिक अधिकार अभिसमय तथा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार अभिसमय वर्ष 1976 में लागू किया तो भारत की संसद में इन दोनों की वर्ष 1979 में पुष्टि कर दी गई थी। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं, बच्चों, दिव्यांगों तथा अन्य विषयों पर समय समय पर जो सम्मेलन आयोजित किये गये, भारत ने उन सभी में भी भागीदारी की और उन में पारित एजेंडे अपने यहाँ लागू किए हैं। यहीं नहीं, भारत में न्यायपालिका संविधान और मूल अधिकारों की प्रहरी है। वह भी मानव अधिकारों के संदर्भ में समय-समय पर ऐतिहासिक फ़ैसले देता आ रहा है। भारत की संसद ने तो नागरिकों के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए जितने कानून पारित किए हैं, विश्व की किसी अन्य संसद ने नहीं किए होंगे।

भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ के एक संकल्प के अनुसरण में वर्ष 1993 में एक अध्यादेश जारी कर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना कर दी थी और उसके प्रथम अध्यक्ष के रूप में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायधीश न्यायमूर्ति श्री रंगनाथ मिश्र को नियुक्त कर दिया था। उसी वर्ष संसद ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 से इस

आयोग को क़ानूनी रूप दे दिया।

अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना को तीस वर्ष हो गए हैं और इन तीस वर्षों में इस क़ानून में कई बार संशोधन कर उसे और अधिक मानव अधिकार संरक्षण के अनुकूल बना दिया गया है। वर्ष 2019 में इस क़ानून में संशोधन कर इसके सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई और यह भी सुनिश्चित किया गया कि इसके सदस्यों में एक महिला सदस्य की अनिवार्य रूप से नियुक्ति की जाएगी। भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को मानव अधिकारों की उल्लंघन का न केवल स्वतः संज्ञान लेने का अधिकार प्राप्त है बल्कि पीड़ितों की शिकायतें मिलने पर या ऐसा किसी न्यायालय द्वारा उसे प्रेषित मामलों को सुनने का भी अधिकार है। उसे एक दीवानी न्यायालय की भाँति शिकायतें सुनने और किसी सरकारी एजेंसी द्वारा मानव अधिकार के उल्लंघन की स्थिति में पीड़ित को मुआवजा देने का भी अधिकार है।

जैसा कि कहा गया है कि ''भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग देश में मानव अधिकारों का प्रहरी है। राष्ट्रीय मानव अधिकार अधिनियम, 1993 की धारा दो में मानव अधिकार शब्द की परिभाषा दे दी गई है। इसमें कहा गया है कि ''मानव अधिकारों का अर्थ है संविधान के अंतर्गत गारंटीकृत, अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित तथा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय जीवन, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित अधिकार हैं।'' राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग संविधान द्वारा अभिनिश्चित तथा अंतरराष्ट्रीय संधियों में निर्मित मानव अधिकारों का संरक्षक हैं। जैसा कि बताया गया है कि इस आयोग के पहले अध्यक्ष न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र थे और वर्तमान में वर्ष 2021 से न्यायमूर्ति अरूण कुमार मिश्र इसके अध्यक्ष हैं। आयोग के सदस्यों का पहले कार्यकाल पाँच वर्ष होता था अब इसे तीन वर्ष कर दिया गया है। पहले अध्यक्ष के पद पर भारत के किसी मुख्य न्यायाधीश की ही नियुक्ति होती थी और आम तौर पर भारत के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का अध्यक्ष बनाया जाता था, अब वर्ष 2019 में संशोधन के अनुसार भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को भी अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भारत में हर वर्ष मानव अधिकार के लाखों मामलों की सुनवाई कर पीड़ितों को राहत देता है और मानव अधिकारों के कार्यान्वयन हेतु भारत सरकार को सलाह भी देता है। भारत एक विशाल देश है जो अपनी जनसंख्या के हिसाब से विश्व में पहले नंबर पर है और उसकी युवा शक्ति भी विश्व में प्रथम स्थान पर है। वर्तमान में युवा पीढ़ी की आशाओं और आकांक्षाओं का ग्राफ आसमान को छू रहा है। इतनी विशाल जनसंख्या के मानव अधिकारों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। बीच बीच में जलवायु संकट के कारण देश को अनचाही विपदाओं और कठिनाईयों को झेलना पड़ता है। साथ ही कुछ मानवीय लापरवाही से अथवा देश विरोधी गतिविधियों से भी मानव अधिकार प्रभावित होते रहते हैं। व्यवस्थाओं और प्रबंधन को कितना ही चुस्त-दुरुस्त बनाओ, फिर भी इतनी विशाल जनसंख्या के मानव अधिकारों के क्षेत्र में कुछ-न-कुछ वांछित

या अवांछित रह जाता है।

यह सब होते हुए भी भारत में मानव अधिकारों की स्थिति फिर भी इतनी चिंतनीय नहीं है जितना विश्व के धरातल पर बनी हुई है। इसी स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के महा सचिव अंटोनियो गेटेरस ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा को संबोधित करते हुए अन्य बातों के साथ साथ कहा था कि ''सत्ता, संपदा और अवसरों को व्यापक और निष्पक्ष रूप से साझा किए जाने के लिए एक नया वैश्विक समझौता मानव अधिकार सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए।'' उन्होंने कहा कि जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, प्रकृति के प्रति उत्पन्न संकट, स्वास्थ्य से जुड़े संकटों से मानव अधिकार नहीं मिल पा रहे हैं। विश्व के अनेक देशों में भयंकर बाढ़, सूखे, बढ़ते समुद्री जल-स्तर से व्यापक मानवीय विनाश हो रहा है। अब बनाबटी बौद्धिकता से भी भेदभाव बढ़ रहा है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित हथियारों से मानवता को बहुत ख़तरा पैदा हो गया है।

कुल मिलाकर विश्व में मानव अधिकारों को सबसे ज्यादा चुनौती ग़रीबी से मिल रही है। विश्वभर में हर 8 में से 1 व्यक्ति भूख के साथ जी रहा है। दुनिया में 24 हज़ार व्यक्ति रोजाना भुखमरी के शिकार होकर अकाल मौत मर जाते हैं। ऐसे दौर में हम मानव अधिकारों की बात करते नहीं थकते। यह संपूर्ण विश्व के लिए शर्मनाक है। मानव अधिकारों की बात करने वालों के लिए यह किसी चुनौती से कम नहीं है। दुनिया के हर संपन्न व्यक्ति और देश को भूख से पीड़ित लोगों को पेट भर खाना खिला कर उनके मानव अधिकारों की रक्षा के लिए आगे आना होगा, तभी सही अर्थों में मानव अधिकारों की रक्षा की जा सके गई।

अब इस मानव अधिकार विशेषांक के बारे में बात करते हैं। विधि भारती परिषद् की स्थापना वर्ष 1993 में की गई थी और वर्ष 1994 मे 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक विधि शोध पत्रिका का शुभारंभ किया गया। तभी से इस शोध पत्रिका के विषयगत विशेषांक निकालने का सिलसिला आरंभ किया गया। विधि भारती पत्रिका का अंक 12 महिला सशक्तिकरण विशेषांक, 16-17 अंक संविधान विशेषांक तथा 25-26 मानव अधिकार विशेषांक निकाला गया। मानव अधिकार विशेषांक वर्ष 2001 में निकाला गया था जिसका लोकार्पण तत्कालीन पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री जगदीश शरण वर्मा तथा अन्य महान विद्वानों द्वारा नई दिल्ली में कांस्टीट्यूशन क्लब के स्पीकर हाल में एक भव्य पुरस्कार आयोजन कार्यक्रम में किया गया था। उस मानव अधिकार विशेषांक को प्रकाशित किए अब वर्ष 2023 में लगभग चौथाई शती हो गई है और इन पच्चीस वर्ष में मानव अधिकारों के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हो चुकी है। वर्तमान में देश और दुनिया में मानव अधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए विधि भारती परिषद् ने अब पुनः यह मानव अधिकार विशेषांक निकाला है जिसमें देश के प्रबुद्ध विद्वानों ने अपने आलेख भेज कर हमें उन्होंने अनुग्रहित किया है, उनका धन्यवाद और आभार।

❑

डॉ. नीति निपुण सक्सेना

भारत में बच्चों के मानव अधिकारों का संरक्षण : क़ानून और चुनौतियाँ

बच्चे संप्रभुता, क़ानून के शासन, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और अंत में अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के भविष्य के संरक्षक हैं। वे हमारे आदर्शों, आकांक्षाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, भविष्य की आशाओं के संभावित अवतार हैं। वे महान दार्शनिकों, शासकों, वैज्ञानिकों, राजनेताओं, सक्षम विधायकों, प्रशासकों, शिक्षकों, न्यायाधीशों, प्रौद्योगिकीविदों, उद्योगपतियों, इंजीनियरों, श्रमिकों, योजनाकारों के रूप में 'भविष्य' हैं जिन पर देश टिका रहेगा। बाल अधिकारों के लिए विशिष्ट मानव अधिकार उपकरणः बाल अधिकारों की घोषणा 1924, राष्ट्र संघ द्वारा अपनाई गई, बच्चों के अधिकारों से निपटने वाले पहले अंतरराष्ट्रीय साधन के रूप में है। बच्चे एक मानव संसाधन हैं, अमूल्य लेकिन कमज़ोर हैं। भारत में विभिन्न क़ानून, उस स्थिति पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जहाँ बच्चों को ग़ैर-इकाई के रूप में माना जाता था और जहाँ उन्हें न केवल शोषण और दुर्व्यवहार से मुक्त करने के लिए ईमानदार प्रयास किए गए थे बल्कि उन्हें भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा और सम्मान तक उचित पहुँच के साथ अपनी पूरी क्षमता विकसित करने में सक्षम बनाया गया था।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने बाल अधिकारों पर कन्वेंशन को अपनाया जो कि पहली अंतरराष्ट्रीय संधि है जो बच्चों के मूल अधिकारों को परिभाषित करती है। एक सुरक्षित बचपन एक मानव अधिकार है। उन्हें सशस्त्र बलों में भर्ती किया जाता है। उन्हें मौत की सजा दी जाती है, गायब कर दिया जाता है, क्रूर और अमानवीय तरीकों से दंडित किया जाता है और कई अन्य प्रकार की हिंसा को झेला जाता है। इस अध्ययन का उद्देश्य गंभीर रूप से मूल्यांकन करना है कि बाल अधिकारों के उल्लंघन को कितने प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है और माता-पिता और सरकार को बच्चों के अधिकारों की गारंटी देने और हानिकारक परिस्थितियों में बच्चों की सुरक्षा करने के लिए उनकी जिम्मेदारियों के बारे में आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करना है।

कीवर्ड : बच्चे, मानव अधिकार, भारत का संविधान।

परिचय

प्रकृति ने बच्चों सहित प्रत्येक मनुष्य को कुछ निहित अधिकार प्रदान किए हैं। ये मौलिक अधिकार मनुष्य को प्रारंभ से ही प्रदान किए जाते हैं। भ्रूण की अवस्था से ही मनुष्य अधिकारों

से संपन्न है। मां के गर्भ में भ्रूण प्रारंभिक बिंदु है तब से मनुष्य को कुछ बुनियादी अधिकारों की गारंटी दी जाती है। ये अधिकार हर एक में आंतरिक हैं। राज्य इन अधिकारों को न तो दे सकता है और न ही रद्द कर सकता है। राज्य को इन अधिकारों को पहचानना और गारंटी देना है।

दुनिया भर में लाखों बच्चों का शोषण, दुर्व्यवहार और उनके साथ भेदभाव किया जाता है। इन बच्चों में बाल मज़दूर, सशस्त्र संघर्षों से प्रभावित बच्चे, यौन शोषण से पीड़ित बच्चे, क़ानून का उल्लंघन करने वाले या राज्य की देखरेख में रहने वाले बच्चे, साथ ही सड़कों पर रहने वाले, विकलांग होने वाले या धार्मिक या जातीय-अल्पसंख्यक भेदभाव स्थिति से पीड़ित बच्चे शामिल हैं।

बच्चे कल्याणकारी उपायों के प्राप्तकर्ता थे। केवल बीसवीं शताब्दी के दौरान ही बच्चों के अधिकारों की अवधारणा का उदय हुआ। अधिकार दृष्टिकोण मुख्य रूप से सामाजिक न्याय, ग़ैर-भेदभाव, इक्विटी और सशक्तिकरण के मुद्दों से संबंधित है। यह बच्चों की अद्वितीय भेदभाव के कारण है 1989 में बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन को अपनाने के लिए नेतृत्व करने वाली वार्ताओं में कनाडा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संयुक्त राष्ट्र ने 20 नवंबर को सार्वभौमिक बाल दिवस के रूप में नामित किया है।

बच्चा कौन है?

1989 का बच्चे के अधिकारों पर सम्मेलन बच्चे शब्द को परिभाषित करता है, जिसका अर्थ अठारह वर्ष से कम आयु के प्रत्येक मनुष्य से है, भारत में, भारत की जनगणना और भारत का संविधान चौदह वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बच्चों के रूप में परिभाषित करता है। बाल अधिनियम बच्चे को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जिसने 16 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है यदि वह लड़का है या 18 वर्ष की यदि वह लड़की है।

बच्चों के विभिन्न अधिकार

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में घोषित मानव अधिकार सभी मनुष्यों पर लागू होते हैं, चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो, और इस तरह बच्चों को वयस्कों के समान अधिकारों का लाभ मिलता है।

अंतरराष्ट्रीय क़ानून

बच्चों के अधिकार का लक्ष्य : बाल अधिकारों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक बच्चे को अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने का अवसर मिले। बच्चों के अधिकार की शर्त है कि बिना किसी भेदभाव के सभी बच्चों को पूर्ण विकास करने में सक्षम होना चाहिए, शिक्षा और स्वास्थ्य, देखभाल तक उनकी पहुँच होनी चाहिए, एक उपयुक्त वातावरण में बड़े होना चाहिए, उनके अधिकारों के बारे में सूचित किया जाना चाहिए और समाज में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए। अधिकार बच्चों को हिंसा और दुर्व्यवहार से बचाने का एक साधन है

बच्चों के अधिकार लोगों के बीच आपसी सम्मान को बढ़ावा देते हैं। बच्चे के अधिकारों के लिए सम्मान तभी पूरी तरह से हासिल किया जा सकता है, जब खुद बच्चों सहित सभी यह पहचानें कि हर व्यक्ति के समान अधिकार हैं और फिर सम्मान, समावेश और स्वीकृति के व्यवहार और व्यवहार को अपनाएँ।

1. बच्चों के अधिकार मौलिक गारंटी और आवश्यक मानव अधिकारों द्वारा गठित होते हैं।
   i. बच्चों के अधिकार मौलिक अधिकारों को मान्यता देते हैंः जीवन का अधिकार, ग़ैर-भेदभाव सिद्धांत, शारीरिक और मानसिक अखंडता की सुरक्षा के माध्यम से सम्मान का अधिकार (गुलामी, यातना और बुरे व्यवहार आदि के ख़िलाफ़ सुरक्षा)
   ii. बच्चों के अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकार हैं, जैसे पहचान का अधिकार, राष्ट्रीयता का अधिकार, आदि।
   iii. बच्चों के अधिकार आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार हैं, जैसे शिक्षा का अधिकार, अच्छे जीवन स्तर का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार आदि।

20 नवंबर, 1989 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने बाल अधिकारों पर कन्वेंशन को अपनाया जो मानव अधिकारों के लिए एक मील का पत्थर है। यह पहली अंतरराष्ट्रीय संधि है जो बच्चों के नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को मान्यता देती है। भारत ने 1992 को कन्वेंशन की पुष्टि की। बाल अधिकारों पर कन्वेंशन सबसे व्यापक रूप से स्वीकृत मानव अधिकार संधि है -- संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों में केवल संयुक्त राज्य अमेरिका और सोमालिया ने इसकी पुष्टि नहीं की है।

बाल अधिकारों पर कन्वेंशन में 54 खंड हैं, और इनमें से अधिकांश खंड बच्चों के अलग-अलग अधिकारों को सूचीबद्ध करते हैं, और अलग-अलग जिम्मेदारियाँ जो सरकार और माता-पिता सहित अन्य लोगों को सुनिश्चित करनी होंगी कि बच्चों के पास ये अधिकार हैं --

1. **समानता का अधिकार** : (अनुच्छेद 2) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी बच्चों को कन्वेंशन में अधिकार हैं, चाहे उनके या उनके माता-पिता की नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य राय, राष्ट्रीय, जातीय या सामाजिक मूल, संपत्ति, विकलांगता, जन्म या अन्य स्थिति कुछ भी हो। समानता का अधिकार है।
2. **बच्चों के सर्वोत्तम हित** : (अनुच्छेद 3) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जब कोई निर्णय लिया जाए जो आपको प्रभावित करता है तो बच्चे के सर्वोत्तम हितों को ध्यान में रखा जाए। बच्चों के साथ काम करने वाले सभी संगठनों को इस तरह से काम करना चाहिए जो बच्चों के लिए सबसे अच्छा हो।
3. **माता-पिता के अधिकार और पारिवारिक जीवन का अधिकार** : सरकार को आपको पालने के लिए बच्चे के माता-पिता / परिवार / देखभाल करने वालों के अधिकारों का सम्मान करना चाहिए, जहाँ वे आपको इस तरह से उठा रहे हैं जो आपके अधिकारों का सम्मान करता है (अनुच्छेद 5)। बच्चों को माता-पिता को जानने और उनकी देखभाल करने का

भी अधिकार है (अनुच्छेद 5), और सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उन्हें माता-पिता से उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं लिया जाए, जब तक कि यह उनके सर्वोत्तम हित में न हो (अनुच्छेद 8 और 9)। जहाँ आप एक या अपने माता-पिता दोनों से अलग हैं (उदाहरण के लिए, जहाँ आपके माता-पिता अलग हो गए हैं), सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप उस माता-पिता से संपर्क करें जिससे आप अलग हो गए हैं, जब तक कि यह आपके सर्वोत्तम हित में न हो। उन बच्चों के लिए जिनके माता-पिता अलग-अलग देशों में रहते हैं, सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप माता-पिता दोनों के नियमित संपर्क में रह सकें (अनुच्छेद 10)। माता-पिता या अभिभावकों की जिम्मेदारी है कि वे आपका पालन-पोषण करें, और उन्हें ऐसा करना चाहिए जो आपके सर्वोत्तम हित में है। सरकार को आपके माता-पिता की मदद अवश्य करनी चाहिए जहाँ यह आपके लिए उनकी ठीक से मदद करने के लिए आवश्यक है (अनुच्छेद 18)।

4. **पहचान का अधिकार (जन्म प्रमाण-पत्र) :** (अनुच्छेद 7 और 8) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप जन्म के समय पंजीकृत हैं (अर्थात् आपके पास जन्म प्रमाण-पत्र है), और यह कि आपके पास एक नाम और एक राष्ट्रीयता है। आपका जन्म पंजीकृत होना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह आपको अपने अन्य अधिकारों का प्रयोग करने में मदद करता है (उदाहरण के लिए शिक्षा, आवास और अन्य सहायता प्राप्त करने के लिए आपको इसकी आवश्यकता है और आपको मतदान करने के लिए पंजीकरण करने की अनुमति देगा)।
5. **विदेश जाने का अधिकार :** (अनुच्छेद 11) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चों को अवैध रूप से बाहर नहीं ले जाया जाए।
6. **आपकी राय सुनने के बाद (अनुच्छेद 12) :** निर्णय लेने पर आपको अपनी राय देने का मौका दिया जाना चाहिए जो आपको प्रभावित करता है और सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्णय लेने वाले लोगों द्वारा इन विचारों को ध्यान में रखा जाए।
7. **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और जानकारी प्राप्त करना :** आपको दूसरों के साथ जानकारी प्राप्त करने और साझा करने में सक्षम होना चाहिए, जब तक इससे दूसरों को नुकसान न हो (अनुच्छेद 13)। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप कई स्रोतों से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जैसे विभिन्न समाचार पत्र और टेलीविजन और रेडियो कार्यक्रम, और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मीडिया में ऐसे कार्यक्रम और जानकारी शामिल है जो बच्चों के लिए प्रासंगिक हैं और आपको नुकसान नहीं पहुँचाते हैं (अनुच्छेद 17)।
8. **विचार और धर्म की स्वतंत्रता :** (अनुच्छेद 14) विचार, विवेक और धर्म की स्वतंत्रता।
9. एक साथ इकट्ठा होने और संगठनों में शामिल होने की स्वतंत्रता : (अनुच्छेद 15): 15 संघ और शांतिपूर्ण सभा की स्वतंत्रता

10. **निजता का अधिकार :** (अनुच्छेद 16) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई भी आपकी निजता में हस्तक्षेप करने या आपके सम्मान या प्रतिष्ठा पर हमला करने में सक्षम नहीं है।
11. **हिंसा, शोषण, दुर्व्यवहार, उपेक्षा और दुर्व्यवहार से सुरक्षा :** (अनुच्छेद 19)
12. अनुच्छेद 20 पारिवारिक वातावरण से वंचित (अस्थायी या स्थायी रूप से) बच्चे की सुरक्षा
13. **गोद लेना :** (अनुच्छेद 21) यदि आप गोद लेने जा रहे हैं, तो सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपके सर्वोत्तम हितों को ध्यान में रखा जाए।
14. **विकलांग बच्चे :** (अनुच्छेद 23) यदि आप मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम हैं, तो सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप एक पूर्ण और सभ्य जीवन जीने में सक्षम हैं और उन्हें स्वतंत्र रूप से काम करने में सक्षम होने और शामिल होने में आपकी मदद करनी चाहिए। समुदाय में; जो लोग आपकी परवाह करते हैं उन्हें ज़रूरत पड़ने पर समर्थन दिया जाना चाहिए।
15. **स्वास्थ्य :** (अनुच्छेद 24) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप जितना हो सके उतना स्वस्थ रह सकें, और जब आपको इसकी आवश्यकता हो तब आप स्वास्थ्य देखभाल प्राप्त करने में सक्षम हों। आपको स्वच्छ पानी, पौष्टिक भोजन प्राप्त करने और स्वस्थ वातावरण में रहने में भी सक्षम होना चाहिए। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि आपको स्वस्थ रहने की जानकारी मिल सके।
16. **बच्चे अपने माता-पिता के साथ नहीं रह रहे हैं :** यदि आप अपने माता-पिता के साथ नहीं रह रहते हैं या आपको अपने माता-पिता से अलग होना पड़ा है, तो सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपकी देखभाल की जाए, और आपको विशेष सहायता और सुरक्षा दी जाए (अनुच्छेद 20)। यदि आपकी देखभाल स्थानीय अधिकारियों द्वारा की जाती है (उदाहरण के लिए पालक देखभाल में) या आपको शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य समस्या के लिए विशेष देखभाल या उपचार प्रदान करने के लिए एक विशेष सुविधा में रखा जाता है, तो आपको किसी को नियमित रूप से अपनी स्थिति की समीक्षा करनी चाहिए (अनुच्छेद 25)।
17. **लाभ पाने का अधिकार :** सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपको और आपके माता-पिता या देखभाल करने वालों को ज़रूरत पड़ने पर वित्तीय सहायता मिल सके (अनुच्छेद 26)।
18. **जीवन स्तर :** (अनुच्छेद 27) आपको एक ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है जो आपके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। यह सुनिश्चित करना आपके माता-पिता की जिम्मेदारी है कि आपने इन ज़रूरतों को पूरा किया है, लेकिन सरकार को आपके माता-पिता को समर्थन देकर उनकी मदद करनी चाहिए, अगर वे ऐसा करने में सक्षम नहीं हैं।
19. **शिक्षा का अधिकार :** सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपको अच्छी गुणवत्ता

वाली शिक्षा मिले। इसमें यह सुनिश्चित करना शामिल है कि प्राथमिक और हाई स्कूल मुफ़्त है और आपके लिए उपलब्ध है, कि आप नियमित रूप से स्कूल जा सकते हैं और यह कि स्कूल आपको इस तरह से अनुशासित नहीं करते हैं जिससे आपको नुकसान होता है और केवल आपकी गरिमा का सम्मान करता है (अनुच्छेद 28)। . आपकी शिक्षा सुनिश्चित करे कि आप अपनी पूरी क्षमता का विकास करें और मानव अधिकारों, अपने माता-पिता और अन्य देशों के मूल्यों, भाषा और संस्कृति का सम्मान करना सीखें (अनुच्छेद 29)।

20. **अल्पसंख्यक समूहों के बच्चे :** यदि आप एक जातीय, धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक समूह से हैं, तो सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप अपने समूह की भाषा और संस्कृति का उपयोग करने में सक्षम हैं (अनुच्छेद 30)।
21. **आराम और आराम :** (अनुच्छेद 31) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपके पास आराम और अवकाश का समय है और आप सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल हो सकते हैं।
22. **काम का अधिकार :** (अनुच्छेद 32) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आप ऐसा कोई काम न करें जो आपके लिए हानिकारक हो या जो आपकी शिक्षा को बाधित करता हो।
23. **नशीले पदार्थों के प्रयोग से रक्षा करें :** (अनुच्छेद 33) सरकार को बच्चों को अवैध नशीले पदार्थों के प्रयोग से बचाना चाहिए।
24. **यौन शोषण से सुरक्षा :** (अनुच्छेद 34) सरकार को आपको किसी भी प्रकार के यौन शोषण से बचाना चाहिए।
25. **अपहरण :** (अनुच्छेद 35) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपका अपहरण नहीं किया गया है, या बेचा नहीं गया है।
26. **नुकसान से सुरक्षा :** (अनुच्छेद 36) सरकार को आपको किसी अन्य प्रकार के नुकसान या आपके कल्याण के लिए बुरे कार्यों से बचाना चाहिए।
27. **अत्याचार और नजरबंदी के ख़िलाफ़ सुरक्षा :** (अनुच्छेद 37) सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कभी भी आपके साथ क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक तरीके से प्रताड़ना या व्यवहार न किया जाए।
28. **सेना में शामिल होना :** (अनुच्छेद 38) सरकार को आपको 15 साल की उम्र से पहले सेना में शामिल नहीं होने देना चाहिए। आपको युद्ध क्षेत्र में विशेष सुरक्षा मिलनी चाहिए।
29. **दुर्व्यवहार से उबरना :** (अनुच्छेद 39) यदि आप दुर्व्यवहार के शिकार हुए हैं, तो सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपको ठीक होने में मदद दी जाए।
30. **बच्चे जिन्होंने क़ानून तोड़ा है :** यदि आप पर क़ानून तोड़ने का आरोप है, तो सरकार को आपके साथ सम्मान सहित व्यवहार करना चाहिए। आपको तब तक निर्दोष माना जाना चाहिए जब तक कि आप दोषी साबित नहीं हो जाते, आपको सीधे क्यों गिरफ़्तार

किया गया है, इसके बारे में बताया जाए और अपने परिवार और एक वकील से सहायता प्राप्त करने में सक्षम हों (अनुच्छेद 40)।

3. बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन

भारत ने 1992 में बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की पुष्टि की और बाल अधिकारों के रूप में निम्नलिखित को सूचीबद्ध किया,

1. **जीवन जीने का अधिकार :** जीवित रहने के अधिकार में जीवन का अधिकार, जीवन का प्राप्य मानक शामिल है। स्वास्थ्य, पोषण और जीवन का पर्याप्त स्तर। इसमें एक नाम और राष्ट्रीयता का अधिकार भी शामिल है।
2. **संरक्षण का अधिकार :** कन्वेंशन के अनुसार, इस अधिकार में सभी प्रकार के शोषण, दुर्व्यवहार और अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार से मुक्ति शामिल है। इसमें आपातकाल और सशस्त्र संघर्ष की स्थितियों में विशेष सुरक्षा का अधिकार शामिल है। लक्ष्य सरल है, कमज़ोर बच्चों को उन लोगों से बचाकर उनके दिमाग और शरीर की रक्षा करना (जो उनका फायदा उठाएँगे)।
3. **विकास का अधिकार :** इस अधिकार में शिक्षित होने का अधिकार, प्रारंभिक बचपन के दौरान विकास और देखभाल के लिए सहायता प्राप्त करने और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार शामिल है। इसमें अवकाश, मनोरंजन और सांस्कृतिक गतिविधियों का अधिकार भी शामिल है।
4. **विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार :** कन्वेंशन के अनुसार, भागीदारी का अधिकार बच्चे को उचित जानकारी तक पहुँच और विचार और अभिव्यक्ति, विवेक और धर्म की स्वतंत्रता प्रदान करता है।

वर्तमान क़ानूनी ढाँचा, भारतीय संविधान और बाल अधिकार

भारत का संविधान देश का मूल क़ानून है जिसमें प्रत्येक नागरिक के लिए मौलिक अधिकार और निर्देशक सिद्धांत शामिल हैं। भारत के संविधान में मौलिक अधिकार राज्य पर यह सुनिश्चित करने की प्राथमिक जिम्मेदारी डालते हैं कि बच्चों की सभी ज़रूरतों को पूरा किया जाए और उनके बुनियादी मानव अधिकारों की पूरी तरह से रक्षा की जाए।

मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता है। राज्य के नीति निदेशक तत्त्व उन दिशा-निर्देशों को निर्धारित करते हैं जिनका सरकार को पालन करना होता है। यदि उनका उल्लंघन किया जाता है तो उन्हें अदालतों के सामने नहीं ले जाया जा सकता है, लेकिन न्यायिक व्याख्या के कारण, कई तत्त्व अब अदालतों के सामने लाए गए क़ानूनी कार्यों के माध्यम से लागू हो गए हैं।

1. अनुच्छेद 15(3) में राज्य को बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने की आवश्यकता है।
2. अनुच्छेद 21-ए 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान

करता है। इस तरह से जैसाकि राज्य क़ानून द्वारा निर्धारित कर सकता है। भारत के संविधान के इस अनुच्छेद 21ए में परिकल्पना की गई है कि 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार है।

3. अनुच्छेद 23 बच्चों सहित मानव के अवैध व्यापार पर रोक लगाता है।
4. अनुच्छेद 24 में यह प्रावधान है कि 14 वर्ष से कम आयु का कोई भी बच्चा किसी ख़तरनाक व्यवसाय या उद्योग में काम नहीं कर सकता है।
5. अनुच्छेद 51-ए कहता है कि यह माता-पिता और अभिभावक का मौलिक कर्त्तव्य होगा कि वह छह से चौदह वर्ष की आयु के बीच अपने बच्चे को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

86वाँ संविधान संशोधन : शिक्षा का अधिकार, एक मौलिक अधिकार है। लंबे संघर्ष के बाद 2001 में शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने के लिए 86वाँ संविधान संशोधन किया गया। यह 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को लागू करता है।

सुरक्षा अधिकारों को पूरा करने के लिए क़ानून : सरकारी प्रतिबद्धता

बाल संरक्षण के लिए सरकार की प्रतिबद्धता और प्राथमिकता अपने बच्चों के लिए एक सुरक्षात्मक वातावरण बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण है। सरकार को इस प्रतिबद्धता को समस्याओं की स्वीकृति और मान्यता, उचित नीति के निर्माण, मजबूत क़ानूनी ढाँचे और प्रोग्रामिंग, और कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त संसाधनों के आवंटन के माध्यम से प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि बाल संरक्षण के लिए तंत्र बच्चों के अनुकूल, कार्यात्मक और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों तक पहुँचने की स्थिति में हों। क़ानून के अनुसार बच्चों के लिए सुरक्षात्मक वातावरण बनाने की दिशा में भारत सरकार द्वारा की गई कुछ ऐसी पहले हैं :--

1. किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000।
2. राष्ट्रीय कार्य योजना, 2005
3. बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति, 1974
4. बाल दुर्व्यवहार पर अध्ययन, 2007

बाल अधिकार चुनौतियाँ

बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन बाल अधिकारों की ओर से अंतरराष्ट्रीय आंदोलन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है। इस व्यापक दस्तावेज़ में बच्चों की सुरक्षा और भलाई के लिए सार्वभौमिक क़ानूनी मानकों या मानदंडों का एक सेट है। बाल सैनिक, पैरोल के बिना किशोर जीवन, शिक्षा का अधिकार प्रमुख बाल अधिकार चुनौतियाँ हैं।

1. **बिना पैरोल के किशोर जीवन :** किशोर न्याय की माँग करें। बच्चे भयानक अपराध कर सकते हैं और करते हैं। जब वे ऐसा करते हैं, तो उन्हें जवाबदेह ठहराया जाना

चाहिए, लेकिन इस तरह से जो पुनर्वास के लिए उनकी विशेष क्षमता को दर्शाता है। अमेरिका में लगभग 2,500 लोग 18 साल से कम उम्र के अपराधों के लिए पैरोल की संभावना के बिना आजीवन कारावास की सजा काट रहे हैं। माना जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका पैरोल के बिना बच्चों को आजीवन कारावास की सजा देने में अकेला खड़ा है। हालाँकि कई देश तकनीकी रूप से अभ्यास की अनुमति देते हैं, एमनेस्टी इंटरनेशनल को अमेरिका के बाहर ऐसे मामलों की जानकारी नहीं है जहाँ हाल के वर्षों में इस तरह की सजा दी गई हो।

ये मानक मानते हैं कि अपराध कितना भी गंभीर क्यों न हो, बच्चे जो अभी भी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से विकसित हो रहे हैं, वयस्कों के समान दोषी नहीं हैं और उनके युवा और अपरिपक्वता के लिए उपयुक्त आपराधिक न्याय प्रणाली में विशेष उपचार की आवश्यकता है।

2. **शिक्षा का अधिकार :** शिक्षा एक मानव अधिकार है सभी को शिक्षा का अधिकार है -- जो कम-से-कम प्राथमिक स्तर पर सभी के लिए निःशुल्क उपलब्ध होनी चाहिए। दुनिया भर में कई बच्चे अपनी शिक्षा से वंचित रह जाते हैं क्योंकि :

1. उनसे काम कराया जाता है।
2. उन्हें सशस्त्र बलों में भर्ती किया जाता है।
3. उनके परिवारों के पास स्कूली शिक्षा के लिए भुगतान करने का साधन नहीं है।
4. जब वे अपनी शिक्षा जारी रखते हैं तो उन्हें हिंसा का सामना करना पड़ता है।

बाल अधिकारों पर कन्वेंशन बच्चों के बुनियादी अधिकारों को परिभाषित करता है जिसमें कई चुनौतियाँ शामिल हैं जो इस प्रकार हैं :

1. **शिक्षा का अधिकार :** 6-18 आयु वर्ग के अनेक भारतीय बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं, कक्षाएँ छोड़ने की दर ख़तरनाक रूप से बढ़ जाती है।
2. **अभिव्यक्ति का अधिकार :** प्रत्येक बच्चे को अपनी पसंद के अनुसार स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्ति करने का अधिकार है।
3. **सूचना का अधिकार :** प्रत्येक बच्चे को अपने मूल अधिकारों और समाज में अपनी स्थिति जानने का अधिकार है। वंचित और वंचित बच्चों के बीच निरक्षरता और अज्ञानता की उच्च घटनाएँ उन्हें और उनके समाज के बारे में जानकारी तक पहुँच बनाने से रोकती हैं।
4. **पोषण का अधिकार :** भारत में हर पाँच किशोर लड़कों में से एक कुपोषित है, जबकि भारत में हर दो लड़कियों में से एक कुपोषित है।
5. **स्वास्थ्य और देखभाल का अधिकार :** भारत में 2 साल से कम उम्र के 58 प्रतिशत बच्चों का पूरी तरह से टीकाकरण नहीं हुआ है और इनमें से 24 प्रतिशत बच्चों को किसी भी प्रकार का टीकाकरण नहीं मिलता है। भारत में 60 प्रतिशत से अधिक बच्चे एनीमिया के शिकार हैं।
6. **दुर्व्यवहार से सुरक्षा का अधिकार :** 5 से 15 वर्ष की आयु के बीच लगभग 2 मिलियन

बाल व्यावसायिक यौनकर्मी हैं और 15 से 18 वर्ष के बीच लगभग 3.3 मिलियन हैं। वे भारत में वाणिज्यिक यौनकर्मियों की कुल आबादी का 40 प्रतिशत हिस्सा है। हर साल 500,000 बच्चों को इस धंधे में धकेला जाता है।

7. **शोषण से सुरक्षा का अधिकार :** भारत में 17 मिलियन बच्चे आधिकारिक अनुमान के अनुसार काम करते हैं। ग़रीब और बंधुआ परिवार अक्सर अपने बच्चों को ठेकेदारों को 'बेच' देते हैं जो शहरों में आकर्षक नौकरियों का वादा करते हैं और बच्चों को वेश्यालय, होटल और घरेलू काम में लगाया जाता है। कई भाग जाते हैं और सड़कों पर जीवन पाते हैं।
8. **विकास का अधिकार :** प्रत्येक बच्चे को विकास का अधिकार है जो बच्चे को उसकी पूरी क्षमता का पता लगाने देता है। वंचित बच्चों की प्रतिकूल रहने की स्थिति उन्हें स्वतंत्र और बेरोकटोक बढ़ने से रोकती है।
9. **मनोरंजन का अधिकार :** प्रत्येक बच्चे को यह अधिकार है कि वह कुछ समय मनोरंजक गतिविधियों जैसे खेल, मनोरंजन और शौक को तलाशने और विकसित करने में बिताएँ। भारत में अधिकांश ग़रीब बच्चों को मनोरंजक गतिविधियों पर ख़र्च करने का समय नहीं मिलता है।
10. **नाम और राष्ट्रीयता का अधिकार :** प्रत्येक बच्चे को एक राष्ट्र के साथ अपनी पहचान बनाने का अधिकार है। भारत में अधिकांश वंचित बच्चों को वस्तुओं की तरह व्यवहार किया जाता है और अन्य देशों को श्रम या वेश्याओं के रूप में निर्यात किया जाता है।
11. **जीने का अधिकार :** भारत में जन्म लेने वाली 12 मिलियन लड़कियों में से 3 मिलियन अपने पंद्रहवें जन्मदिन को नहीं देख पाती हैं, और उनमें से एक मिलियन अपने पहले जन्मदिन तक भी जीवित नहीं रह पाती हैं। हर छठी बालिका की मृत्यु लैंगिक भेदभाव के कारण होती है।

निष्कर्ष

कई विकासशील देशों की तरह, भारत भी शिशु मृत्यु दर, बाल विवाह, मातृ मृत्यु दर और बाल विधवाओं की घटनाओं, यौन पर्यटन, और वेश्यावृत्ति, बाल शोषण और बाल श्रम के लिए राष्ट्रीय सीमाओं के पार भी बाल तस्करी की समस्याओं का सामना करता है। आगे कई चुनौतियाँ हैं। सभी जनसांख्यिकीय समूहों में, बालिकाएँ संभवतः सामाजिक रूप से सबसे अधिक वंचित हैं। अपने जीवन चक्र के हर चरण में -- गर्भाधान से वयस्कता तक -- वह विशेष रूप से मानव अधिकारों के हनन के प्रति संवेदनशील है। दिल्ली सामूहिक बलात्कार और पांडिचेरी एसिड हमले की हाल की घटनाओं को बालिकाओं के मानव अधिकारों के दुरुपयोग के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

इसलिए एक बाल केंद्रित संस्कृति विकसित करनी होगी। क़ानूनी प्रणाली को सीआरसी में दिए गए अधिकारों और मानकों के संदर्भ में क़ानूनों की व्याख्या करनी चाहिए। इससे बच्चे

को न्यायालय प्रणाली के माध्यम से न्याय तक पहुँच प्राप्त होगी। सीआरसी और उसके मानकों के संदर्भ में सभी बाल क़ानूनों की समीक्षा करने की आवश्यकता है और उनके बीच संबंध होना चाहिए। भारतीय क़ानूनी प्रणाली को बच्चे के अधिकारों को सुरक्षित करने और बच्चे को न्याय प्रदान करने के लिए काफी कुछ विकसित करना होगा।

केवल क़ानूनी सुधार से बच्चे को न्याय नहीं मिल सकता। निस्संदेह, सबसे प्रभावी निवारक उपाय इस तरह के संभावित दुरुपयोग के बारे में जागरूकता है और विभिन्न सेवा प्रदाताओं -- डॉक्टरों, शिक्षकों, वकीलों, न्यायाधीशों, पुलिस, स्वयंसेवकों, माता-पिता, ट्रेड यूनियनों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के बीच इससे कैसे निपटा जाए -- ताकि वे दुरुपयोग के जोखिम को काफी हद तक कम कर सकें। निष्कर्ष निकालने के लिए चुनौतियों का तेजी से समाधान करना होगा और इन सबसे ऊपर, सार्वभौमिक क़ानूनी सिद्धांत का मूल मूल्य है कि नीतियाँ बनाई जाएँ, संरचनाएँ और प्रक्रियाएँ स्थापित की जाएँ, और ऐसे कार्य किए जाएँ जो हमेशा और हमेशा बच्चे के सर्वोत्तम हित में हों, जिनका पालन किया जाना चाहिए।

बच्चा एक कली है, उसे अधिकारों के पोषण से फूल बनकर खिलने दो, स्वतंत्रता के फल के साथ और देखभाल और ध्यान के साथ न केवल माता-पिता से बल्कि समाज के तत्वावधान में राज्य से भी। बाल अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष एक लंबी यात्रा होने जा रही है।

❑

संदर्भ

1. "बच्चों और मानव अधिकारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन" पर लेखः के. इलाकिया, एस. कंचना रत्नम, 1. रिसर्च स्कॉलर, पीजी एंड रिसर्च डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, प्रेसीडेंसी कॉलेज, चेन्नई-600005, भारत 2. असिस्टेंट प्रोफेसर, पीजी एंड रिसर्च डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, प्रेसीडेंसी कॉलेज, चेन्नई-600005, भारत
2. बाजपाल आशा, (2006)। "भारत में बाल अधिकार : क़ानून, नीति और अभ्यास, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पीपी.10 से 30
3. कागजी, (2001)। 'भारत का संविधान', इंडियन लॉ हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, खंड II
4. श्रीनिवासुलु, एनएस (2008)। मानव अधिकार : एक सिक्के के कई पहलू, रीगल प्रकाशन, नई दिल्ली, पीपी. 45 से 56
5. महिला एवं बाल विकास विभाग की वार्षिक रिपोर्ट - 2005-2006, भारत सरकार, महिला एवं बाल मंत्रालय
6. टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, सेंटर फॉर सोशियो लीगल स्टडीज एंड ह्यूमन राइट्स, प्रोफेसर आशा बाजपाल, लॉ रिलेटिंग टू चाइल्ड प्रोटेक्शन, पीपीरू1-2

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह

समलैंगिक शादियों पर सुप्रीम मंथन : नैतिकता, विवाह और क़ानून

प्रस्तावना

भारत में समलैंगिक शादियों को मान्यता देने के मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय में एक बड़ी सुनवाई जारी है। उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ समलैंगिक शादियों को मान्यता देने वाली याचिकाओं की सुनवाई कर रही है[1] और साथ-ही-साथ अपनी टिप्पणियाँ भी दे रही है। अप्रैल 25, 2023 को उच्चतम न्यायालय में इसी मुद्दे पर सुनवाई करते हुए मुख्य न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड़ ने कहा कि 'देश में शादी और विवाह को लेकर क़ानून बनाने का अधिकार देश की संसद को है हम यह देखना चाह रहे है कि सर्वोच्च अदालत कितनी दूरी तय कर सकती है। याचिका में कही गई बातों पर क़ानून बनाने का अधिकार देश की संसद के पास है और इस बात को लेकर किसी तरह का विवाद नहीं है कि ये विषय समवर्ती सूची-5 के अंतर्गत आता है जो विवाह और तलाक के मामले को कवर करता है।'

समलैंगिक विवाह के मामले में सबसे बड़ा सवाल यह है कि उच्चतम न्यायालय किन बिंदुओं पर अपना फ़ैसला सुनाएगा या हस्तक्षेप करेगा। एक सवाल यह भी है कि देश की अदालत कितना आगे जाकर इस मामले में फ़ैसला ले सकती है। इस मामले में सुनवाई के दौरान अदालत ने **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य,**[2] के मामले का भी जिक्र किया जिसमें कार्यस्थल पर महिलाओं के ख़िलाफ़ यौन उत्पीड़न की घटनाओं से निपटने के लिए क़ानून की कमियों को दूर करने की दिशा में दिशा-निर्देश जारी किए थे और ये निर्देश काफी कारगर साबित हुए और बाद में संसद ने इसी दिशा-निर्देश का पालन करते हुए क़ानून बनाया। इस वाद में याचिकाकर्ताओं के वकीलों ने अदालत में आकर दलील दी थी कि सरकार अदालत में आकर यह नहीं कह सकती है कि यह संसद का मामला है। जब किसी समुदाय के मौलिक अधिकारों का हनन होता है उस स्थिति में संविधान में दिए गए अनुच्छेद 32 के अंतर्गत संवैधानिक न्यायालय का रूख करने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है।

इतिहास गवाह है कि जैसे-जैसे समाज आगे बढ़ता है समाज अपने अंदर व्याप्त दकियानूसी परंपराओं और रीति-रिवाजों को छोडकर आगे बढ़ने की कोशिश करता है। भारतीय समाज के

साथ भी ऐसा ही कुछ हो रहा है। प्राचीन काल से लेकर अबतक भारतीय समाज में समलैंगिक विवाह को कतई मान्यता नहीं दी गई थी। हिंदू, मुस्लिम और अन्य धर्मों में भी इसे वैधानिक दर्ज़ा नहीं दिया गया है और न हीं इसके संबंध में उस काल/समाज में इसकी परिकल्पना भी की गई थी। लेकिन भारत में बदलते सामाजिक, आर्थिक और बढ़ते आधुनिकीकरण के कारण इस संबंध में बातें उठनी प्रारंभ हो गई और अंत में वर्ष, 2018 में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक निर्णय में भारत में समलैंगिकता को अपराध के दायरे से बाहर कर दिया है। अब इसी विषय को लेकर एक नया आयाम उच्चतम न्यायालय के सामने आया है और सुप्रीम कोर्ट इस पूरे विषय को लेकर विचार-विमर्श कर रहा है।

अन्य देशों में समलैंगिकता की स्थिति

यह यथार्थ है कि समलैंगिकता को दुनिया के कुछ देशों में विधिक मान्यता मिल चुकी है। यद्यपि कुछ देशों में भले ही समलैंगिकता को क़ानूनी मान्यता दे दी हो, लेकिन दुनियाभर की संस्कृतियों और धर्म इसे सहज भाव से स्वीकार नहीं करते हैं। स्थिति यह है कि जिन देशों में समलैंगिकता को वैधानिक दर्ज़ा हासिल हो गया है, वहाँ भी इसे व्यापक सामुदायिक और सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिल पाई है। आज के आधुनिक युग में बड़े शहरों में यह संस्कृति बहुत तेजी से फैली हो लेकिन गाँवों में आज भी इस तरह की संस्कृति को दरकिनार किया जाता है। यहीं कारण है कि भारत की केंद्र सरकार ने जब उच्चतम न्यायालय में इसके ख़िलाफ़ हलफनामा दिया, तो भारतीय जनता द्वारा व्यापक तौर पर इसका भारी समर्थन किया जा रहा है।

भारत सरकार ने इस मामलों को दो तरह से ख़ारिज करने का प्रयास किया है। उसने एक तरह इस मामले पर सुनवाई के उच्चतम न्यायालय के अधिकार पर सवाल उठाया है तो दूसरी तरह समलैंगिकता के विचार को शहरी संभ्रात सोच बताया है।

न्यायालय के समक्ष विवाद की विषय-वस्तु

उच्चतम न्यायालय में समलैंगिकों के द्वारा एक याचिका दायर की गई है। यह एकमात्र याचिका नहीं है बल्कि इसके इस विषय पर उच्चतम न्यायालय और भारत की अन्य उच्च न्यायालयों में अनेकों याचिकाएँ दायर की गई थी। इन तमाम याचिकाओं में कहा गया है कि कोर्ट के द्वारा समलैंगिकता को वैधानिक दर्ज़ा न मिलने के कारण समलैंगिक लोगों के गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार प्रभावित हो रहा है। याचिकाकर्ता के वकील मुकुल रोहतगी ने माँग की है कि विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में कुछ बदलाव किए जाए और इसके अंतर्गत स्त्री और पुरुष की परिभाषा में बदलाव किए जाए और सिर्फ व्यक्ति शब्द का प्रयोग किया जाए। साथ ही पक्षकारों के उम्र में भी बदलाव किए जाए। उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया है कि इस मामले को पसर्नल लॉ से दूर रखा जाए। हिंदू विवाह अधिनियम, मुस्लिम शरियत

एक्ट, इत्यादि को दूर रखा जाए। पूरा मुद्दा यह है कि क्या विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में बदलाव कर समलैंगिक विवाह को इसमें शामिल किया जाए या नहीं!

इस पृष्ठभूमि में यदि हम पाँच साल पहले जाए तो 7 सितंबर, 2018 को उच्चतम न्यायालय ने **नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ,**[3] के वाद में धारा 377 को समाप्त कर दिया था और समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से मुक्त कर दिया था। इसका प्रभाव यह भी पड़ा कि अब समलैंगिक लोग एक दूसरे के साथ रह भी सकते हैं अर्थात् समलैंगिक जोड़े क़ानूनी तौर पर भी एक साथ रह सकते हैं। भारत में आज भी उनके विवाह को क़ानूनी मंजूरी प्राप्त नहीं हुई है। ऐसे में समलैंगिक दंपत्ति को वे सारे अधिकार प्राप्त नहीं है जो दूसरे अन्य दंपत्ति को प्राप्त है। जैसे समलैंगिक दंपत्ति बच्चे को गोद नहीं ले सकते हैं। वे सरोगेसी का उपयोग नहीं कर सकते हैं, उन्हें उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त नहीं है। साथ ही नौकरी के दौरान मृत्यु होने पर पेंशन का अधिकार भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसी तरह से उन्हें सामाजिक तौर पर एक संरक्षकता प्राप्त नहीं हो पाती है। उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए ही समलैंगिक लोगों ने अपनी याचिकाओं के माध्यम से उनके विवाह को क़ानूनी मान्यता देने की माँग की है।

समलैंगिकता को क़ानूनी मान्यता देने में अड़चने

भारत में किसी भी विवाह को मान्यता देने के दो तरीके प्रचलन में है।

1. विवाह को किसी पर्सनल लॉ के अंतर्गत मान्यता प्राप्त किया जा सकता है। ज्यादातर हिंदू व मुस्लिम समुदाय अपने पर्सनल लॉ के अंतर्गत ही विवाह को मान्यता प्राप्त कराते हैं। इसके धार्मिक क़ानून भी कहते हैं। जैसे हिंदू विवाह अधिनियम, मुस्लिम शरियत एक्ट इत्यादि। इन क़ानूनों में व्यक्ति धर्म के बाहर जाकर विवाह नहीं कर सकते हैं। वे अपने धर्म के अंदर ही विवाह कर सकते हैं।
2. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अंतर्गत मान्यता प्राप्त करना। यह अधिनियम भारत में अंतर-धार्मिक विवाह को मान्यता देता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म का हो, इस अधिनियम के अंतर्गत विवाह कर सकता है। इसे एक धर्म निरपेक्ष क़ानून भी कहा जा सकता है।

उपरोक्त दोनों में ही भारत में समलैंगिकता को मान्यता नहीं दी गई है क्योंकि विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 4 (सी) में स्पष्ट कहा गया है कि भारत में केवल पुरुष और महिला के विवाह को ही मान्यता दी गई है क्योंकि अधिनियम में पुरुष और महिला शब्द का प्रयोग किया गया है। इस धारा में लिंग आधारित भाषा का उपयोग किया गया है। इसी शब्द के निर्वचन के अनुसार समलैंगिकता को मान्यता नहीं दी जाती है। इसी अधिनियम में अनेकों प्रावधानों में पुरुष और महिला शब्द का प्रयोग किया गया है। कहीं पर भी पुरुष और पुरुष और महिला और महिला की बात नहीं की गई है। अगर समलैंगिकता को मान्यता दिया जाना है तो सर्वप्रथम उक्त अधिनियम में बदलाव करना होगा।

समलैंगिक विवाह के विरोध में तर्क

बार काउंसिल ऑफ इंडिया का विरोध

बार काउंसिल ऑफ इंडिया ने समलैंगिक शादियों के विरोध में प्रस्ताव पारित किया था जिसमें यह जिक्र था कि भारत जैसे देश में समलैंगिक विवाह को मान्यता नहीं दिया जा सकता है। इससे देश की मूलभूत संरचनाओं पर बुरा असर पड़ेगा। साथ ही आने वाली पीढ़ी पर भी बुरा असर पड़ेगा। भारत के वकीलों की सर्वोच्च संस्था बार काउंसिल ने भी इस मसले पर सरकार का खल्लमखुल्ला समर्थन किया है। बार काउंसिल ने प्रस्ताव पारित करके कहा है कि देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता को देखते हुए इस मुद्दे को संसद पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

काउंसिल के प्रस्ताव में कहा गया है कि कोई भी ऐसा मामला, जिससे मौलिक सामाजिक संरचना से छेड़छाड़ की आशंका हो या जो देश के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों पर दूरगामी प्रभाव डाल सकता हो, उस पर विधायी प्रक्रिया द्वारा ही विचार किया जाना चाहिए। प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि इस तरह के संवेदनशील मामले में उच्चतम न्यायालय का कोई भी फ़ैसला आने वाली पीढ़ियों के लिए नुकसानदायक साबित हो सकता है। प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि 99.9 प्रतिशत से अधिक लोग समलैंगिकता के विचार का विरोध करते हैं।

केंद्र सरकार का विरोध

साल 2016 में जब उच्चतम न्यायालय ने समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर किया था, तब धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं ने फ़ैसले का विरोध नहीं किया और समलैंगिक संबंधों को निजी मामला मान लिया था। लेकिन जब शादी को मंजूरी का सवाल आया तो व्यापक विरोध उभर कर सामने आ रहा है। सरकार चूँकि पुरानी मान्यताओं एवं परंपराओं में विश्वास करती है और भारत एक धार्मिक देश होने के कारण इसके हज़ारों साल की परानी संस्कृतियों और मान्यताएँ सदियों से चली आ रही है। भारत समाज में विवाह को एक पवित्र संस्कार की संज्ञा दी गई है। पति को परमेश्वर एवं पत्नी को अर्द्धांगनी माना गया है। शायद सरकार इसी दबाव में उच्चतम न्यायालय में हलफनामा दायर किया है।

हलफनामे में केंद्र सरकार के तर्क

1. केंद्र सरकार हमेशा समलैंगिक विवाह के विरोध में रही है। सरकार का मानना है कि विवाह की धारणा विपरीत लिंग के दो व्यक्तियों के बीच एक संघ की परिकल्पना है अर्थात् भारत में विवाह दो विपरीत लिंग के व्यक्तियों एक संघ के रूप में देखा जाता है। यह परिभाषा वर्षों से आधारित सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से मान्यता प्राप्त है। ऐसे में यदि इस परिभाषा के बीच किसी प्रकार के अन्य शब्दों को जोड़ने से हमारा एक सामाजिक ताना-बाना प्रभावित हो सकता है।

2. सरकार ने अपने हलफनामे में कहा है कि समलैंगिक विवाह की वैधता देने से पहले विधायिका को शहरी, ग्रामीण और अर्ध-ग्रामीण सभी क्षेत्रों की सोच और अवधारणा पर गौर करना होगा।
3. केंद्र के मुताबिक, समान लिंग विवाह को मान्यता देने के अदालत के फ़ैसले का मतलब क़ानून की एक पूरी धारा का वर्चुअल न्यायिक पुनर्लेखन जैसा होगा।
4. अदालत को ऐसे मामलों में व्यापक आदेश पारित करने से बचना चाहिए क्योंकि उसके लिए उचित जगह विधायिका है।
5. केंद्र का यह भी कहना है कि इस संबंध में सभी राज्यों की भी राय मानी जानी चाहिए क्योंकि समलैंगिकता क़ानूनों को वैधानिक दर्ज़ा मिलने से इसका व्यापक असर राज्यों पर हीं पड़ेगा।

समलैंगिकता के विरोधियों का तर्क यह भी है कि भारत को सेक्स के बड़े बाज़ार में बदलने की कोशिश का अगला चरण है समलैंगिक शादियों को मान्यता दिलाना। उनका कहना है कि अगर ऐसा हुआ तो संयुक्त परिवार में विघटन बढ़ेगा।

समलैंगिकता को वैधानिक दर्ज़ा देने की माँग के विरोधियों का यह तर्क है कि जिस तरह से पश्चिमी देशों में सर्वप्रथम समलैंगिकता को मान्यता दी गई, फिर चाइल्ड सेक्स की उम्र घटाई गई, ऐसा भारत में भी हो सकता है।[4]

भारत में एक बड़ा वर्ग जिसमें ज्यादातर पुराने धरोहर और धार्मिक भावनाओं से जुड़े लोग है उनका कहना है कि देश में समलैंगिक विवाह पश्चिमी सभ्यता का वायरस है। इस तरह से मानसिक विकृति से देश में अपराध बढ़ेगा और मानवीय मूल्यों के साथ ही महिला के मौलिक अधिकारों पर गहरा आघात पहुँचेगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि समलैंगिक विवाह का किसी भी धर्म ग्रंथ या जाति-धर्म में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है। यदि इस संबंध में सरकार कोई अलग से क़ानून बनाती है तो अपराध बढ़ेगा और पूरी दुनिया में अशांति फैल सकती है।[5]

समलैंगिक विवाह के पक्ष में तर्क

समलैंगिक विवाह को मान्यता देने संबंधी बड़ा तर्क यह है कि भारतीय संविधान के अंतर्गत सभी नागरिकों को समान संरक्षण प्राप्त है। सभी नागरिकों को यौन अभिविन्यास के बिना, विवाह करने का अधिकार प्राप्त है। अपना पार्टनर चुनने का स्वतंत्र अधिकार प्राप्त है और यह अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राप्त हैं। अतः यदि कोई व्यक्ति समलैंगिक के साथ भेदभाव करता है अर्थात् समलैंगिक दंम्पति और दूसरे दंपति के साथ अंतर करता है तो इस अंतर को भारतीय संविधान के उल्लंघन के तौर पर देखा जा सकता है साथ ही उनके साथ भेदभाव पूर्ण रवैये को भी देखा जा सकता है जो संविधान का उल्लंघन करता है। इसी भेदभाव को दूर करने के लिए इसके विवाह को मान्यता देने की ज़रूरत है।

यदि समलैंगिक जोड़े को विवाह की अनुमति नहीं दी जाती है तो उन्हें उक्त क़ानूनी अधिकार प्राप्त नहीं होगा। यदि उन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ना है तो उन्हें सामाजिक संरक्षण और क़ानूनी संरक्षण की आवश्यकता होती है। क्योंकि भारत में विवाह एक सामाजिक संगठन है। विवाह से जोड़ों को सामाजिक और क़ानूनी लाभ प्राप्त होते हैं जैसे तलाक, दत्तक ग्रहण, भरण-पोषण, उत्तराधिकार, पेंशन इत्यादि। जब तक उन्हें क़ानूनी मान्यता नहीं दी जाएगी तब तक उनके विवाह को सामाजिक संरक्षण प्राप्त नहीं होगा और कोई भी क़ानूनी लाभ के वे हकदार नहीं होगे।

समाज में शादीशुदा जोड़े और परिवार को संपूर्णता की निशानी समझा जाता है। इतर लैंगिक लोगों को जब जोड़े और परिवार बनाने का अधिकार है तो बाकी समूहों को भी संविधान की मूल भावना का सम्मान करते हुए यह अधिकार दिया जाना चाहिए। शादी एक जिस्मानी रिश्ते से अधिक एक भावनात्मक और मानसिक साझेदारी है। समाज की बनाई हुई परिभाषाओं और उससे उत्पन्न भेदभाव के कारण समलैंगिक समाज का एक बड़ा समूह मानसिक अवसाद और तनाव का शिकार होता है।

भारत के मुख्य न्यायाधीश डी.वाई. चंद्रचूड़ ने समलैंगिकों की शादी पर चल रही सुनवाई में इसे सही परिप्रेक्ष्य में रखते हुए कहा है कि ‘सवाल यह नहीं है कि आपके जननांग क्या है! यह इससे कही अधिक जटिल मसला है। इसलिए जब विशेष विवाह अधिनियम में पुरुष और महिला का जिक्र आता है, तब भी एक पुरुष और एक महिला की धारणा जननांगों पर आधारित पूर्ण धारणा नहीं है।

विधिक विश्लेषण

पहले भारत सरकार और बाद में बार काउंसिल ऑफ इंडिया के क़दम से समलैंगिकता को वैधानिक दर्ज़ा देने का विरोध करने वाला समाज उत्साहित है। उच्चतम न्यायालय का फ़ैसला कुछ भी हो, इस बात की पूरी संभावना है कि उसका निर्णय ठीक वैसे ही होगा जैसे उच्चतम न्यायालय के फ़ैसले के बाद मंडल कमीशन की रिपोर्ट लागू तो हो गई लेकिन आज भी समाज का एक बड़ा हिस्सा इसे दिल से स्वीकार नहीं कर पाया है और न ही संबंध में मानसिकता में कोई परिवर्तन हुआ है।

उच्चतम न्यायालय यदि समलैंगिक विवाह के पक्ष में फ़ैसला देता है तो भारत विश्व का ऐसा 35वाँ देश हो जाएगा, जहाँ समलैंगिक शादी की इज़ाज़त मिलेगी। चौंतीसवाँ देश ताइवान है जहाँ 2019 में समलैंगिक विवाह को मान्यता दी गई थी। इससे पहले नीदरलैंड ने साल 2000 में समलैंगिक विवाह को इज़ाज़त मिली। लेकिन यह सब संघर्ष के बाद हासिल हुआ। इस मामले में उच्चतम न्यायालय में ज़मायत-ए-इस्लामी के वकील कपिल सिब्बल ने कहा कि समलैंगिक विवाह के अन्य पक्षों पर भी विचार करना आवश्यक होगा-जैसे तलाक, भरण-पोषण, उत्तराधिकार, दत्तक ग्रहण और पारिवारिक अदालत के संदर्भ में बाकी दीगर क़ानून। अगर उच्चतम

न्यायालय समलैंगिक विवाह के पक्ष में निर्णय देता है तो इन पहलुओं को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है। इससे भविष्य में होने वाली मुकदमेबाजी से बचा जा सकेगा और समलैंगिक विवाह पर एक बेहतर क़ानून बनाने की दिशा में बढ़ना संभव होगा।

आँकड़े बताते हैं कि एलजीबीटी कम्यूनिटी के तकरीबन 40 प्रतिशत लोग स्यूसाइडल हो जाते हैं। समाज में अस्वीकार्यता के कारण लोग अपनी योनिकता छुपाकर रखते हैं और उन्हें अकसर हिंसा, बलात्कार, ब्लैकमेल का शिकार होना पड़ता है। इसका उदाहरण है कि जिस देशों में समलैंगिक विवाहों को मान्यता दी गई है वहाँ ऐसी वारदाते कम या नहीं होती है। इन क़ानूनों की वजह से सकारात्मक वातावरण बनाने में मदद मिली है।

हमें भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के अंतर्गत समलैंगिक संबंधों को अपराध के दायरे से बाहर निकालने वाले फ़ैसले को ध्यान में रखना होगा। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने कहा था, महान जर्मन विचारक जोहान वोल्फगैग बॉन गोएथे ने अकारण ही नहीं कहा था कि मै वह हूँ जो मैं हूँ, इसलिए मुझे वैसे ही लो, जैसा मै हूँ। तब जस्टिस इंदू मेहरोत्रा ने कहा, 'इतिहास को एलजीबीटी कम्युनिटी से माफी माँगनी चाहिए, जिनके साथ वर्षों से गलत व्यवहार हुआ।' इस निर्णय का एक सार यह भी रहा कि देश संवैधानिक नैतिकता से निर्देशित होगा। इसमें दिए गए मुख्य बिंदुओं को ध्यान में रखे तो निश्चित तौर पर उच्चतम न्यायालय की यह संवैधानिक और नैतिक जिम्मेदारी है कि वह प्रत्येक नागरिकों को अधिकारों का पालन सुनिश्चित करे।

बार काउंसिल की यह टिप्पणी कि 99.9 प्रतिशत जनता समलैंगिक विवाह के विरुद्ध है, संविधान की मूल भावना का हनन करती है। मूलभूत अधिकारों की रक्षा में किसी वोटिग का दखल नहीं हो सकता है। इसका मापदंड यह होगा कि हमारा संविधान इस विषय में क्या कहता है। अपनी योनिकता के बारे में मुखर होना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। संविधान इस बात की गारंटी देता है। अतीत में भी विधवा विवाह, सती प्रथा, छुआछुत और दहेज क़ानूनों का विरोध हुआ है और हो रहा है, लेकिन देश ने इसके विरुद्ध क़ानून बनाए क्योंकि वे न्यायोचित थे। अगर आज भी दहेज प्रथा पर जनमत संग्रह कराया जाए तो संभव है कि न्याय हार जाए। सारे वैज्ञानिक शोध कहते हैं कि किसी भी आबादी में 10 से 20 प्रतिशत समलैंगिक होते हैं। सामाजिक नैतिकता और बहुसंख्यक विचार के आधार बनाकर इतने बड़े वंचित समूह से उसका मौलिक अधिकार नहीं छिना जा सकता है।

नैतिकता और विवाह

यह कहना भी ज़रूरी है कि विवाह को अच्छे और बुरे समलैंगिकों में बाँटने का आधार न बनाया जाए। जितना अधिकार समूह को समलैंगिक विवाह का है, उतना ही अधिकार उन समलैंगिकों को बिना विवाह के रहने का है जो अकेले रहना चाहते हैं। विवाह को किसी के जीवन का नैतिक आधार नहीं माना जाना चाहिए। यह भी ध्यान देने योग्य है कि समस्त विवाह

प्रक्रियाएँ किसी-न-किसी धार्मिक मान्यताओं से जुड़ी है और यह सर्वविदित है कि कोई भी धर्म इस संबंध को मान्यता नहीं देता। समलैंगिक समुदाय को भी एक बार सोचना चाहिए कि इस पवित्र बंधन को क्या शादी का नाम देना ही ज़रूरी है![6]

सरकार द्वारा सुझाये अन्य विकल्प

यह अच्छी ख़बर है कि दिनांक 03.05.2023 को उच्चतम न्यायालय में सुनवाई के दौरान केंद्र सरकार के वकील सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता ने कहा कि केंद्र सरकार समलैंगिक जोड़ों की समस्याओं का हल तलाशने के लिए कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाने को तैयार है, लेकिन यह कमेटी समलैंगिक शादियों को क़ानूनी मान्यता देने के मुद्दे पर विचार नहीं करेगी। कमेटी समलैंगिक शादियों को मान्यता दिए बगैर उनके सिविल राइट्स के बारे में उपजे सवालों पर विचार करेगी। उन्होंने कहा, 'समलैंगिक जोड़े समस्याओं को लेकर अपने सुझाव दे सकते हैं। वे बता सकते हैं कि उनकी चिंताओं को दूर करने के लिए क्या क़दम उठाए जाएँ। समिति उनपर विचार करेगी और कोशिश करेगी कि क़ानून के दायरे में जहाँ तक मुमकिन हो, उनका निदान किया जाए। सरकार इस संबंध में प्रशासनिक उपाय तलाशने को लेकर सकारात्मक है। उल्लेखनीय है कि पिछली सुनवाई के दौरान कोर्ट ने केंद्र सरकार से पूछा था कि क्या सेम सेक्स कपल को बिना शादी की मान्यता के कुछ अधिकार दिए जा सकते हैं! कोर्ट ने सेम सेक्स कपल के जॉइंट बैंक अकाउंट और इंश्योरेंस पालिसी में नामिनी जैसे मसलों पर सरकार के विचार जानने चाहे थे।' इस संबंध में जस्टिस एस. के. कौल ने कहा कि 'सरकार शादी को मान्यता देने को तैयार नहीं है, लेकिन बाकी समस्याओं को देखने के लिए तैयार है। यह अहम क़दम है। बिना पूर्वाग्रह के इसे स्वीकार करना चाहिए।'[7]

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् अंत में यह कहा जा सकता है कि समलैंगिक विवाह के पक्ष और विपक्ष में अनेक तर्क व कुतर्क दिए जा सकते हैं। यदि दुनिया में पटल पर इसका विश्लेषण करें तो अब तक केवल 34 देशों में ही इसे मान्यता मिली है लेकिन भारत में इसके बढ़ते प्रभाव को देखते हुए यह कहना उचित नहीं होगा कि संसद को इसपर तुरन्त कोई क़ानून पारित करना चाहिए। यह सही है कि लोकतंत्र में सभी मुद्दे पर सहमति बहुसंख्यक समुदाय की इच्छा पर नहीं छोड़ी जानी चाहिए। यदि किसी एक नागरिक के भी मूलभूत अधिकार का उल्लंघन होता है तो उसे संवैधानिक उपचार प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता है भले ही 142 करोड़ की आबादी में उसका अस्तित्व मात्र एक ही क्यों न हो। भारत में समलैंगिक समुदाय की संख्या थोड़ी ही है लेकिन यह सही है कि उसके मूलभूत अधिकारों को भी भारतीय संविधान द्वारा संरक्षण प्राप्त है। वह भी तब जब एलजीबीटी समुदाय के अधिकारों के संरक्षण के लिए ट्रांसजेंडर व्यक्तियों (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 भारतीय संसद द्वारा पारित भी किया जा चुका है। अंत में यही कहा जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय को भी यह

सुनिश्चित करना होगा कि अगर हम समलैंगिकों की भावनाओं को देखेंगे तो दूसरे लोगों की भावनाओं को भी देखना होगा और इस संबंध में कोई उचित रास्ता निकालना होगा जिससे कि बहुसंख्यक समुदाय के विवाह संबंधी भावनाओं को आघात पहुँचे बिना समलैंगिकों के उसके मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित न किया जाए।

❑

संदर्भ

1. प्रस्तुत मामले को चीफ जस्टिस डी.वाई. चंद्रचूड़, जस्टिस संजय किशन कौल, जस्टिस पी.एस. नरसिम्हा, जस्टिस एस. रविंद्र भट्ट एवं जस्टिस हिमा कोहली द्वारा सुनवाई की जा रही है जबकि केंद्र सरकार के तरफ से वकील तुषार मेहता और याचिकाकर्ताओं की तरफ से मुकुल रोहतगी द्वारा पैरवी की जा रही है।
2. ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 3011
3. ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 4321
4. उमेश चतुर्वेदी, समलैंगिक शादी पर क्यों खिंची तलवारें, नवभारत टाइम्स, हिंदी न्यूज़ पेपर, दिनांक 27.04.2023, पृ. 8
5. ये बातें अखिल भारतीय भिक्षु संघ के उपाध्यक्ष भदंत शांति मित्र ने कही, नवभारत टाइम्स, हिंदी न्यूज़ पेपर, दिनांक 30.04.2023, पृ. 6
6. आरिफ जाफर, समलैंगिक शादी पर क्यों खिंची तलवारें, नवभारत टाइम्स हिंदी न्यूज़ पेपर, दिनांक 27.04.2023, पृ. 8
7. नवभारत टाइम्स हिंदी न्यूज़ पेपर, दिनांक 04.05.2023, पृ. 1

रीना यादव

मानव अधिकार एवं दिव्यांग अधिकारों की आवश्यकता

मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो व्यक्ति को उसके जन्म से प्राप्त होते हैं। मानव अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के मनुष्य होने के कारण प्राप्त होते हैं। मानव अधिकार विहीन व्यक्ति मनुष्य के रूप में अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकता और न ही उसका विकास संभव है। मानव अधिकारों के बिना मनुष्य जड़ एवं पशु समान हैं। मानव अधिकार मानव जीवन के लिए प्राण वायु समान है और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है।

मानव अधिकारों की विशेषताएँ

(1) मानव अधिकार सार्वभौमिक है अर्थात् प्रत्येक देश में प्रत्येक व्यक्ति को जाति, धर्म, लिंग, निवास, उत्पत्ति आदि के भेदभाव के बिना समान रूप से उपलब्ध हैं।

(2) मानव अधिकार प्राकृतिक है क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होते हैं।

(3) मानव अधिकार अदेय है इसका मतलब है कि इन अधिकारों से व्यक्ति को अलग नहीं किया जा सकता और न एक व्यक्ति द्वारा अपने मानव अधिकार को दूसरों को दिया जा सकता है।

(4) मानव अधिकार व्यक्ति के लिए अनिवार्य है, क्योंकि इनके बिना कोई भी व्यक्ति मनुष्य के रूप में न तो अपने अस्तित्व को बनाए रख सकता है। और न ही अपना विकास कर सकता है।

(5) मानव अधिकार अविभाज्य तथा अंतर संबंधित हैं इसका तात्पर्य है कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक, नागरिक तथा आर्थिक मानव अधिकार एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं तथा व्यवहार में उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

(6) मानव अधिकार विश्व शांति और सुरक्षा तथा विकास के लिए आवश्यक है यदि इन अधिकारों का कहीं पर भी उल्लंघन किया जाता है तो इससे विश्व शांति को ख़तरा उत्पन्न हो सकता है।[1]

मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 10 दिसंबर, 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकार किया।

मानव अधिकार संबंधी इस सार्वजनिक घोषणा-पत्र में 30 धाराएँ हैं जिनमें कहा गया है कि ''सभी मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र हैं और प्रतिष्ठा व अधिकारों के मामले में समान हैं। राष्ट्र,

रंग, रूप, भाषा, धर्म और लिंग आदि किसी भी आधार पर उनमें भेदभाव नहीं करेगा। हर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपने अधिकारों को हासिल करें और स्वतंत्र रहें। सभी को जीवन जीने में स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार है। किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह किसी के साथ क्रूरतापूर्ण अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार करें।"[2]

मानव अधिकारों के रूप में मुख्यतः मानव को नागरिक अधिकार, राजनीतिक अधिकार, आर्थिक अधिकार, सामाजिक अधिकार तथा सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त हैं जिनका क्रियान्वयन एवं उनकी रक्षा मानव की उन्नति के लिए आवश्यक है।

मानव अधिकार सार्वभौमिक है सामान्य व्यक्तियों की तरह ही विकलांगों या निःशक्तजनों को भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। विकलांग होने के कारण से उनके अधिकारों में कटौती नहीं की जा सकती। विकलांगों को भी मानव अधिकार एवं मूल अधिकार समान रूप से प्रदान किए गए हैं।

वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा 9 दिसंबर, 1975 को विकलांगों के अधिकारों की घोषणा की तथा वर्ष 1981 को 'अंतरराष्ट्रीय विकलांग वर्ष' के रूप में मनाया गया। संयुक्त राष्ट्र ने विकलांगों के लिए अंतरराष्ट्रीय नियम बनाने के लिए तथा उनसे जुड़े मुद्दों को परिभाषित करने हेतु 3 दिसंबर, 2006 को विकलांगों के अधिकार से संबंधित प्रसंविदा पारित की तथा उसे वर्ष 2008 में लागू किया। विश्व भर में प्रतिवर्ष 3 दिसंबर को 'अंतरराष्ट्रीय विकलांग दिवस' के रूप में मनाया जाता है। विकलांग शब्द 'विकल' तथा 'अंग' दो शब्दों से बना है इसका अर्थ है -- अपूर्ण अंग अर्थात् जिस व्यक्ति में किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक कमी हो उसे विकलांग कहा गया है।

वर्तमान में भारतीय परिदृश्य में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने रेडियो पर 'मन की बात' कार्यक्रम में विकलांगों अथवा निःशक्तजनों के लिए 'दिव्यांग' शब्द का प्रयोग किए जाने की बात कही है। वर्तमान में आमजनों में भी इस शब्द का प्रचलन बढ़ने लगा है।

भारतीय संसद द्वारा पारित विकलांग व्यक्ति समान अवसर, अधिकार संरक्षण (एवं पूर्ण भागीदारी) अधिकार, 1995 के अध्याय 1 में विकलांग व्यक्ति की परिभाषा दी गई है --

1. नेत्रहीन व्यक्ति या अत्यंत कम दृष्टि वाला कमज़ोर व्यक्ति
2. बधिर व्यक्ति
3. कुंठता के उपचार के पश्चात् ठीक व्यक्ति
4. अस्थिर विकलांग अर्थात् जिसके हाथ-पैर कमज़ोर हो या नहीं हो
5. मानसिक रूप से कमज़ोर व्यक्ति या मानसिक विकृतियों के शिकार व्यक्ति

इस अधिनियम में विभिन्न विकलांग व्यक्तियों की परिभाषा भी दी गई है --

1. नेत्रहीन व्यक्ति उसे माना जाएगा जिसकी दृष्टि बिल्कुल नहीं हो।
2. श्रवणहीन व्यक्ति वह माना जाएगा जिसके बेहतर कान की श्रवण क्षमता 60 डेसीबल कम हो गई हो।

3. कुष्ठ रोग के उपचार के पश्चात् व्यक्ति की यदि हाथ या पैर की संवेदनशीलता खत्म हो गई हो, तो वह विकलांग व्यक्ति माना जाएगा।
4. अस्थि विकलांग व्यक्ति वह माने जाएँगे, जिनकी हड्डियों, जोड़ या माँसपेशियाँ ठीक प्रकार से घूम न पाती हो
5. मानसिक विकृति के शिकार वह व्यक्ति माने जाएँगे जो अन्य प्रकार की मानसिक विकृति के शिकार हो।"[3]

भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार सभी नागरिकों को समान रूप से प्राप्त हैं। दिव्यांग व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है उन्हें समाज के बीच रहने का पूर्ण अधिकार है उन्हें भी सभी भारतीय संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार समान रूप से प्राप्त हैं।

अनुच्छेद 14 : विधि के समक्ष समता

अनुच्छेद 15 : धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध

अनुच्छेद 16 : लोक नियोजन में विषय में अवसर की समता अनुच्छेद 18, वाक्-स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 21 : प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।

अनुच्छेद 25 : अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 29-30 : संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार।[4]

भारत का संविधान सभी को समान अधिकार देता है। दिव्यांग व्यक्तियों के लिए भी न्याय प्राप्त करने का अधिकार, विचार एवं अभिव्यक्ति का अधिकार धर्म की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक एवं शिक्षा का अधिकार तथा प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार समान रूप से देता है।

दिव्यांगों को अधिकारों तथा सम्मान में समानता एक मौलिक अधिकार ही है। समाज में दिव्यांगों को कई बार हेय दृष्टि से भी देखा जाता है जो समाज में स्वास्थ्य समस्या नहीं बल्कि अधिकतर समाज की संकीर्ण मानसिकता को दर्शाता है। परंतु भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान दृष्टि से देखता है तथा समानता का समान अधिकार देता है।

समाज के बीच रहते हुए सामान्य रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार तथा अन्य सामाजिक सुविधाएँ प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है उन्हें बराबरी का अधिकार है। भारत के उच्चतम न्यायालय भी दिव्यांगों के हितार्थ समय-समय पर अपनी मुख्य भूमिका निभाता है।

भारत की सरकार द्वारा 'दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016' का निर्माण किया गया है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 बनाया गया है जो वर्ष 1995 के विकलांग अधिकार अधिनियम को निरस्त करता है।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 की विशेषताएँ

1. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 में कुल 21 विकलांगताएँ हैं।
2. इस एक्ट के तहत दिव्यांग लोगों को सरकारी नौकरी में 4 प्रतिशत आरक्षण मिलेगा।

3. लेकिन सरकारी नौकरी में आरक्षण पाने के लिए 40 प्रतिशत की विकलांगता होनी चाहिए।
4. 6 से 18 आयु वर्ष के सभी विकलांग बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाएगी।
5. आरपीडब्ल्यूडी एक्ट 2016 के तहत 70-100 करोड़ विकलांग लोगों को लाभ मिलेगा।
6. बच्चों में शारीरिक दिव्यांगता का प्रयोग दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में होता है।"[5]

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के तहत कुल 21 विकलांगता है पूर्व के 1995 के विकलांग अधिनियम में 7 विकलांगता थी। देश की सरकार ने दिव्यांगों के अधिकारों के प्रति संवेदनशील पहल की है तथा कई योजनाएँ भी दिव्यांगों के हितार्थ बनाई हैं तथा अवश्य प्रयास भी किए गए हैं --

(1) सुगम्य भारत अभियान

- दिव्यांग जनों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 15 दिसंबर, 2015 को सुगम्य भारत अभियान का शुभारंभ किया गया।
- इस अभियान का उद्देश्य दिव्यांगजनों के लिए एक सक्षम और बाधारहित वातावरण सुनिश्चित करना है। इस अभियान के तहत तीन प्रमुख उद्देश्य-विद्यमान वातावरण में सुगम्यता सुनिश्चित करना, परिवहन प्रणाली में सुगम्यता तथा ज्ञान एवं आईसीटी के माध्यम से दिव्यांगों को सशक्त बनाना शामिल है।

(2) सुगम्य पुस्तकालय

सरकार द्वारा वर्ष 2016 में एक ऑन लाइन मंच 'सुगम्य पुस्तकालय' की शुरुआत की गई है, जहाँ दिव्यांगजन इंटरनेट के माध्यम से पुस्तकालय से संबद्ध सभी प्रकार की उपयोगी पुस्तकों को पढ़ सकते हैं।

- नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए अलग से व्यवस्था की गई है सुगम्य पुस्तकालय में नेत्रहीन व्यक्ति भी अपनी पसंद के किसी भी उपकरण जैसे -- मोबाइल फोन, टेबलेट, कंप्यूटर इत्यादि का उपयोग कर ब्रेल डिस्प्ले की मदद से पढ़ सकते हैं।

(3) यूडीआईडी कार्ड

- भारत सरकार द्वारा वेब आधारित आसाधारण दिव्यांग पहचान यूडीआईडी कार्ड शुरू किया गया है।
- इस पहल से दिव्यांग प्रमाण-पत्र की प्रमाणिकता सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी तथा अलग-अलग कार्यों के लिए कई प्रमाण-पत्र साथ रखने की परेशानी भी दूर होगी।
- इसके तहत विकलांगता के प्रकार सहित विभिन्न विवरण ऑनलाइन उपलब्ध कराए जाएँगे।

(4) **स्वावलंबन योजना**

- दिव्यांग व्यक्तियों के कौशल प्रशिक्षण के लिए एक राष्ट्रीय कार्य योजना की शुरुआत की गई है। उल्लेखनीय है कि दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग द्वारा 500000 दिव्यांग व्यक्तियों को कौशल प्रशिक्षण देने का महत्त्वकांक्षी लक्ष्य तय किया गया है।
- इस कार्य योजना का उद्देश्य वर्ष 2022 के अंत तक 2500000 दिव्यांगजनों को कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना है।"[6]

उपयुक्त सभी योजनाएँ दिव्यांगजनों को वह सुविधा प्रदान करती हैं जिनसे उन्हें जीवन जीने में मददगार साबित हो। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में 2.21 प्रतिशत की हिस्सेदारी दिव्यांगजनों की है। वे समाज में संपूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। दिव्यांग होना कोई अपराध नहीं है। यह प्रकृति की देन है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी दिव्यांगों के लिए मानव अधिकारों की तर्ज पर अंतरराष्ट्रीय नियम बनाए गए हैं --

(1) सभी सदस्य राष्ट्र विकलांगों के लिए हर प्रकार की स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराएँगे।

(2) सभी सदस्य राष्ट्र समाज में विकलांगों के अधिकारों, उनकी आवश्यकताओं, उनकी क्षमताओं और उनके योगदान के बारे में जनता को ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी देने के लिए प्रयास करेंगे।

(3) सदस्य राष्ट्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे प्राथमिक, माध्यमिक तथा अन्य शिक्षा विकलांग बच्चों, युवाओं एवं वयस्कों को उपलब्ध कराएँगे।

(4) सदस्य राष्ट्र यह सुनिश्चित करेंगे कि विकलांग व्यक्ति सांस्कृतिक गतिविधियों में बराबर भाग ले।

(5) सदस्य राष्ट्रों की जिम्मेदारी है कि वे सभी प्रकार की नीतियों के निर्माण में एवं राष्ट्रीय योजना में विकलांगों से जुड़े हर पहलू को शामिल करें।

(6) विकसित एवं विकासशील, दोनों ही प्रकार के देशों की जिम्मेदारी है कि वह आपस में सहयोग करके विकासशील देशों में विकलांगों के जीवन स्तर को सुधारने का काम करें।

(7) सभी सदस्य राष्ट्रों की जिम्मेदारी है कि वह विकलांग व्यक्तियों को रोज़गार के क्षेत्र में अपने मानव अधिकारों का इस्तेमाल करने लायक बनाएँ।

(8) सदस्य राष्ट्र अपने यहाँ विकलांगों हेतु हर प्रकार की सहायक सेवाएँ उपलब्ध कराएँगे।

(9) विकलांगों के लिए चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता सुनिश्चित करने हेतु इस कार्य में लगे सभी व्यक्तियों को हर प्रकार का प्रशिक्षण देना सरकार की जिम्मेदारी होगी।

(10) विकलांगों को बराबरी का अवसर दिलाने वाली सेवाओं एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों की लगातार देखरेख के साथ ही समय-समय पर उनका मूल्यांकन होता रहना चाहिए।"[7]

इस प्रकार वैश्विक स्तर पर भी विकलांगों के लिए नियमों का निर्माण किया गया है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें सशक्त बनाते हैं।

भारतीय लोकतंत्र में जीवन के सभी पहलुओं में नागरिकों के अधिकार सम्मिलित है। उसी प्रकार विकलांग व्यक्ति भी समान रूप से सम्मिलित हैं। हमारे समाज में विकलांगो के प्रति असंतोषजनक व्यवहार किया जाता है जो मानवता के विपरीत है।

भारत में विकलांग व्यक्तियों को लाभान्वित करने हेतु कई क़ानूनों का निर्माण किया गया है जैसे -- विकलांग व्यक्ति अधिनियम, 2016, मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम, 1992, सेरेब्रल पाल्सी वाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय ट्रस्ट, मानसिक मंदता एवं बहु विकलांगता अधिनियम, 1999 आदि क़ानून बनाए गए हैं। परंतु केवल क़ानून बनाने से ही अधिकार मिल नहीं जाते हैं उनको पूर्ण मनोयोग से क्रियान्वयन की आवश्यकता है। उन्हें भी समाज में अन्य व्यक्तियों के समान ही प्रतिभागिता का अवसर मिलना चाहिए तथा विकलांग व्यक्तियों को प्रत्येक क़ानूनी एवं अन्य प्रकार की सहायता जो उनके जीवन की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो पाने का अधिकार होना चाहिए। जिससे उनकी समस्या काफी हद तक हल हो सकेगी। विकलांगों को प्राप्त अधिकार उन्हें रचनात्मकता, सही व्यवसायिक मार्ग-दर्शन, स्वरोज़गार एवं शिक्षा हेतु अग्रसर करते हैं और इस हेतु सभी को और अधिक प्रयास वास्तविक रूप में करने होंगे, जिससे उनका विकास संभव हो।

❑

संदर्भ

1. वाजपेयी अरुणोदय, “मानव अधिकार : प्रकृति एवं औचित्य” (अंतरराष्ट्रीय विधान लेख), प्रतियोगिता दर्पण, मई 2016, पृ. 88
2. पांडेय आई.सी. प्रधान, श्याम नारायण, पांडेय रमेश, “महिलाओं के अधिकार”, सुधाली पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 1
3. भसीन अनीश, “संयुक्त राष्ट्र संघ एवं विकलांगों के अधिकार”, (मानव अधिकार लेख), प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2018, पृ. 89
4. भारत का संविधान, भारत सरकार, “विधि और न्याय मंत्रालय”, वर्ष 2005, पृ. 6, 7, 8, 9, 11, 12
5. https://zedhindi.com>rpwd&act2016
6. drishtiias.com
7. भसीन अनीश, “संयुक्त राष्ट्र संघ एवं विकलांगों के अधिकार”, (मानव अधिकार लेख), प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2018, पृ. 90

संतोष बंसल

सशस्त्र बल अधिनियम (अफ्स्पा) एवं मानव अधिकार

'The Armed Forces Act' अर्थात् सशस्त्र बल अधिनियम स्वतंत्र भारत में एक विवादास्पद और मानव अधिकारों के हनन करने वाला क़ानून रहा है जिसके तहत आपराधिक मामलों में धारा 4 और धारा 6 के ख़िलाफ़ बहुत से बुद्धिजीवी और 'एक्टिविस्टस' प्रश्न उठाते रहे हैं। इनमें सेक्शन-4 में सुरक्षा बल बिना किसी वारंट के नागरिकों के घर में घुस कर गोली मार सकते हैं तथा सेक्शन-6 के अंतर्गत उनपर केंद्रीय सरकार की अनुमति के बिना कोई क़ानूनी कार्यवाही नहीं हो सकती। एक तरह से 'आफ़्स्पा' नागरिकों के मानव अधिकारों को छीनने वाला क़ानून है जिसके तहत नागरिक अपने देश में भी बंधक महसूस करते हैं। लेकिन मोदी सरकार ने उग्रवाद से प्रभावित पूर्वोत्तर क्षेत्र में सुरक्षा की स्थिति में सुधार का हवाला देते हुए, एक अप्रैल से 'सशस्त्र बल विशेष अधिनियम' के तहत आने वाले क्षेत्रों को घटाने का ऐलान किया। चूँकि पिछले कई वर्षों से इस अधिनियम को हटाने की माँग उठ रही थी, अतएव सरकार ने नागालैंड, असम व मणिपुर में कई दशकों बाद 'आफ़्स्पा' के कुछ इलाकों को सूची से हटाने का फ़ैसला किया।

दरअसल, जब नागालैंड के मोन जिले में एक ट्रक पर कोयला खदान से दिन भर की मेहनत-मजूरी कर के लौट रहे एक दर्जन से अधिक मज़दूर फौजी टुकड़ी की अचानक फायरिंग से मारे गए, तो इस घटना के कारण 'आफ़्स्पा' फिर से चर्चा में आ गया। जिसके कारण 'नार्थ ईस्ट' के राज्यों की विधान सभाओं ने इसे हटाने का तुरंत प्रस्ताव पारित किया, जिस का एक सकारात्मक परिणाम जरूर निकला। इस दुर्घटना के फौरन बाद केंद्र सरकार को एक विशेषज्ञ कमेटी नियुक्त करनी पड़ी, जिसने पूर्वोत्तर के काफी बड़े क्षेत्र से 'आफ़्स्पा' हटाने की सिफ़ारिश कर दी। तदोपरांत सरकार ने भी इसकी अधिसूचना जारी कर दी, जिसका जोरदार स्वागत हुआ। गृह मंत्रलय का कहना है कि पिछले तीन वर्षों के दौरान केंद्र ने पूर्वोत्तर में उग्रवाद समाप्त करने और शांति लाने में कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं जिसके असर से वर्ष 2014 की तुलना में वर्ष 2021 में पूर्वोत्तर में उग्रवादी घटनाओं में 74 फीसदी कमी आई है। सुरक्षा कर्मियों और नागरिकों की मृत्यु में भी क्रमशः 60 फीसदी और 84 फीसदी की कमी आई है।[1] ऐसे में सरकार ने पूर्वोत्तर के आम नागरिकों के मानव अधिकारों का सम्मान करते हुए यह जोखिम भरा कड़ा क़दम उठाया, जिसमें देश की सुरक्षा और अखंडता पर कोई समझौता नहीं है।

आखिर 'आफ़्स्पा' क़ानून क्या है? इस पर नज़र डालें तो हमें इसके निर्माण से लेकर, पूर्वोत्तर में इसे लागू करने के सारे घटनाक्रम को खंगालना होगा। यह क़ानून देश के किसी भी अशांत क्षेत्र में शांति स्थापित करने के लिए संसद द्वारा बनाया गया था, जिसे 11 सितंबर, 1958 ईस्वी में लागू किया गया। दरअसल, उस समय असम प्रांत के ही भाग नागालैंड में हथियारबंद पृथकतावादी आंदोलन के चलते, अफ़्स्पा या सशस्त्र बल अधिनियम अस्तित्व में आया और कुछ ही वर्षों में हालातों के मद्देनजर मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा से लेकर जम्मू-कश्मीर तक यह लागू हो गया। जब यह क़ानून बना, तब तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने आश्वासन दिया था कि छह महीने के अंदर इसे हटा लिया जाएगा। दिक्कत तब आई, जब इसकी अवधि भी बढ़ती गई और नए इलाके भी इसके प्रभाव क्षेत्र में आते गए। यद्यपि अख़बारों में इस क़ानून के दुरूपयोग और इसके विरुद्ध आक्रोश की खबरें लगातार छपती रही और देश के सुदूर अंचलों में घट रही ज्यादतियों के घाव भी निरंतर लगते रहे। नवंबर, 2000 में मणिपुर की राजधानी इम्फाल के नजदीक असम राइफल्स की एक टुकड़ी द्वारा की गई फायरिंग में 10 नागरिकों की मौत के विरोध में, प्रारंभ में इरोम शर्मीला ने भूख हड़ताल की। फिर जल्द ही इरोम की मुख्य माँग पूरी तरह 'अफ़्स्पा' क़ानून को हटाने की बन गई जिसके तहत सेना को गिरफ़्तारियों, तलाशियों या नागरिकों पर 'फायरिंग' जैसे अलोकतांत्रिक अधिकार हासिल हो गए थे। अगले 16 वर्षों तक इरोम शर्मीला का अनशन चलता रहा और वह पूरी दुनिया में राज्य की ज्यादतियों के ख़िलाफ़ अहिंसक नागरिक प्रतिरोध का प्रतीक बन गया। इस लंबे काल में भारत में एक परेशान करने वाली छवि लगातार देखी जाती रही, जिसमें एक युवती को सुरक्षा बल के जवान जबरदस्ती गले में नली डालकर उसके पेट में कुछ तरल खाद्य पदार्थ डालते थे। किंतु 9 अगस्त, 2016 को इरोम शर्मीला ने अपना अनशन अचानक खत्म कर दिया, क्योंकि इसके पीछे कारण सरकार की उपेक्षा रही। वह निष्फल और निराश थी कि उनका अनशन व अफ़्स्पा लंबे समय से साथ-साथ चल रहे थे और सरकारों की सोच पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। अनशन से उठने के बाद 2017 में इरोम ने एक राजनीतिक दल बनाकर चुनाव भी लड़ा, लेकिन उन्हें खुद सौ से भी कम मत मिले।

वास्तव में आजाद भारत में 'अफ़्स्पा' के कुछ इतने विचलित करने वाले प्रकरण घटे कि कई बार तो न्यायपालिका को लीक से हटकर आदेश पारित करना पड़ा। कोर्ट ने मानव अधिकारों के लिए 'अफ़्स्पा' की दुर्भाग्यपूर्ण भूमिका को चिह्नित किया तथा राज्य में 'लोकतांत्रिक व्यवस्था' की बहाली में इसे अवरोध माना जिसके कारण 'लॉ एंड आर्डर' के साथ प्रशासनिक प्रक्रिया बाधित हुई और जिस से स्थानीय लोगों का योगदान नगण्य हो गया। एक मुकदमा उच्चतम न्यायालय के सामने इस दौरान मणिपुर में 1528 नागरिकों के फर्जी मुठभेड़ों में मारे जाने का भी आया। पूर्वोत्तर की महिलाओं के साथ 'सैक्सुअल हिंसा' के भी बहुत किस्से प्रकाश में आए, जिनमें बार-बार सैन्य अधिकारियों का नाम आता था। यह महिला नागरिकों के मानव अधिकारों का सरासर उल्लंघन था, इस क़ानून के चलते उनके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं होती थी। सन् 2013 में जे.एस. कमेटी ने इस क़ानून को निरस्त करने एवं सैन्य अधिकारियों पर 'क्रिमनल लॉ' के तहत कार्यवाही करने की सिफ़ारिश की। क्योंकि 'आफ़्स्पा' के तहत सैनिकों को बिना किसी 'अरेस्ट वारंट' के किसी भी

नागरिक को गिरफ़्तार करने का अधिकार प्राप्त है। उन्हें गोली चलाने के लिए भी किसी की इज़ाज़त नहीं लेनी पड़ती एवं सेना की गोली से किसी की मृत्यु होने पर हत्या का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। अगर राज्य सरकार या पुलिस प्रशासन सेना की किसी यूनिट के ख़िलाफ़ 'एफआईआर' दर्ज कर भी लेती है तो अदालत में अभियोग के लिए केंद्र सरकार की अनुमति जरूरी होती है।' किंतु अब असम राज्य का करीब 60 फीसदी हिस्सा 'अफ़्स्पा' के दायरे से बाहर है एवं एक अप्रैल से वहाँ 23 जिलों से इसे हटाया जा रहा है। मणिपुर के भी छह जिलों के 15 थाना क्षेत्र इस क़ानून से बाहर होंगे तथा नागालैंड में सात जिलों के 15 थाना क्षेत्र बाहर होंगे। अरुणाचल में पहले नौ जिलों में लागू था, अब तीन जिलों के कुछ हिस्से बचे हैं। परंतु त्रिपुरा और मेघालय से 'आफ़्स्पा' पूरी तरह हटा दिया गया है। गृह मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने बताया कि इस फ़ैसले का मतलब यह नहीं है कि उग्रवाद प्रभावित इन राज्यों से 'अफ़्स्पा' को पूरी तरह हटाया जा रहा है। बल्कि यह क़ानून तीन राज्यों के कुछ अशांत इलाकों में लागू रहेगा, जिसका मणिपुर-नागालैंड के राजनीतिक दलों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने स्वागत किया।'[2]

अब सवाल यह उठता है कि यह क़ानून कहाँ और क्यों लागू होता है ? वस्तुतः 'अफ़्स्पा' को केंद्र सरकार लागू करती है, जब राज्य सरकार क़ानून व्यवस्था संभालने में नाकाम रहती है। अगर केंद्र को ऐसा लगता है कि उक्त इलाका या राज्य में अलगाववाद चरम पर है। लोग अलग देश की माँग कर रहे है, तो ऐसी स्थिति में केंद्र सरकार अफ़्स्पा क़ानून लागू कर सेना की तैनाती कर सकती है। इधर सेना का भी तर्क होता है कि आंतरिक सुरक्षा या फिर किसी राज्य में क़ानून व्यवस्था सुधारने के लिए सेना के पास पुलिस जैसे आईपीसी, सीआरपीसी इत्यादि क़ानून नहीं हैं, ऐसे में शांति बहाली के लिए सेना के लिए 'अफ़्स्पा' बेहद जरूरी है। चूँकि 'नार्थ ईस्ट' के मणिपुर, नागालैंड सहित पूर्वोत्तर के जिन इलाकों में 'आफ़्स्पा' अरसे पहले लगाया गया था, वहाँ अब पहले जैसा उग्रवाद नहीं है। वैसे सन् 2005 में बी. पी. जीवन रेड्डी कमेटी ने भी वहाँ 'अफ़्स्पा' को हटाने की सिफ़ारिश की थी, क्योंकि यह क़ानून 'discrimination and high handedness'[3] का औज़ार बन गया था।

अब जबकि पूर्वोत्तर में बहुत से उग्रवादी गुटों ने हथियार डाल दिए हैं, जबकि कई शांति वार्ताओं में शामिल हुए हैं। तब कुछ जिलों या इलाकों तक उग्रवाद सिमटने के बाद, पूरे राज्य में इस कड़े क़ानून का औचित्य नहीं है। इसीलिए सेना, अर्ध सैन्य बल, स्थानीय पुलिस की चिंताओं को ध्यान में रखने के साथ, आम नागरिकों की सुरक्षा के अनुसार ही यह फ़ैसला लिया गया है। इसके अतिरिक्त पिछले तीन वर्षो के दौरान भारत सरकार ने पूर्वोत्तर में उग्रवाद समाप्त करने के लिए कई बड़े समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं। जैसे जनवरी, 2020 का बोडो समझौता, जिसने असम की पाँच दशक पुरानी बोडो समस्या का समाधान किया एवं 4 सितंबर, 2021 का कार्बी-आंगलांग समझौता भी, जिसने लंबे समय से चल रहे असम के कार्बी क्षेत्र के विवाद को हल किया। इसके अतिरिक्त अगस्त, 2019 में त्रिपुरा में उग्रवादियों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए तथा 16 जनवरी, 2020 को 23 साल पुराने ब्रू-रिआंग शरणार्थी संकट को सुलझाने के लिए एक ऐतिहासिक समझौता किया गया जिसके अधीन 37,000 आंतरिक विस्थापित लोगों

को त्रिपुरा में बसाया जा रहा है। फिर 29 मार्च, 2022 को असम और मेघालय राज्य की सीमा विवाद के संदर्भ में भी एक और महत्त्वपूर्ण समझौता हुआ है।'[4]

अंततः यह उल्लेखनीय है कि इतने लंबे समय से लागू 'अफ़्स्पा' के ख़िलाफ़ इरोम शर्मीला की लंबी लड़ाई के बावजूद, सरकारों की सोच पर इसका कोई असर नहीं पड़ा था जिसका सन्देश साफ था कि तब राज्य के दोनों अंगों -- सरकार व जनता के लिए मानव अधिकार बहुत उद्वेलित करने वाला मुद्दा नहीं बन सका था। लेकिन फिलहाल पूर्वोत्तर के राज्यों के कई हिस्सों से 'अफ़्स्पा' क़ानून को हटाया जाना एक बहुत बड़ा घटनाक्रम है, जिसका सभी लोगों ने स्वागत किया है। क्इसके लिए बहुत समय से वहाँ के 'एक्टिविस्ट्स' एवं लोकतंत्र प्रेमियों ने माँग रखी हुई थी, अतः 'आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर्स एक्ट' को वहाँ के कुछ इलाकों से हटाना बड़ा महत्त्वपूर्ण निर्णय है। यधपि 'सतबहिनी' क्षेत्र में अब अमन की वापसी हुई जरूर है, किंतु तब भी कई जोखिम जस के तस हैं।

पूर्वोत्तर के तमाम राज्यों में कई वर्षो तक अलगाववादियों का उपद्रव रहा है एवं इन सीमांत प्रदेशों के पड़ोस में बांग्लादेश, म्यांमार और चीन जैसे देश स्थित हैं। इसीलिए फरवरी, 2023 के चुनाव और उनका नतीजा इस दिशा में आगे क्या ठोस क़दम उठाएगा? यह समय ही बताएगा। क्योंकि इस तरह के नीतिगत निर्णय केवल राजनीतिक नेतृत्व ही कर सकता है जो लोकतंत्र को पूर्णतया मजबूत करे। वैसे किसी भी देश को अपने नागरिकों से निपटने के लिए सैन्य बल का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए, जिससे उनके मानव अधिकारों का क्षरण हो। सशस्त्र बलों के उपकरण और उनका बल प्रयोग दुश्मनों से निपटने के लिए होता है, अपने देश के नागरिकों के साथ दुश्मनों जैसा व्यवहार नहीं होना चाहिए। पूर्व आई.पी.एस. अधिकारी श्री विभूति नारायण राय के अनुसार, ''सशस्त्र बलों द्वारा आवश्यकता से बहुत अधिक बल का प्रयोग नहीं होना चाहिए। अपने नागरिकों के असंतोष का हल राजनीतिक इच्छाशक्ति और बातचीत के जरिये निकलना चाहिए। अपवादस्वरूप यदि बल का प्रयोग करना ही पड़े, तो उसके लिए स्थानीय पुलिस सबसे बेहतर विकल्प है। इसके लिए उसके संख्या बल, उपकरणों और प्रशिक्षण में सुधार कर सेना की कमी पूरी की जा सकती है। पंजाब का जीता-जागता उदाहरण हमारे पास है, जहाँ जैसे ही पंजाब पुलिस ने लड़ना शुरू किया, पासा पलट गया।''[5]

❑

संदर्भ

1. मुख्य पृष्ठ पर खबर, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार, 1 अप्रैल, 2022
2. प्रथम पृष्ठ पर खबर, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार, 1 अप्रैल, 2022
3. Afspa removal : A positive step & editorial, The Hindustan Times
4. अफ़्स्पा हटाने का फ़ैसला सुरक्षा आकलन पर आधारित, पृष्ठ 8, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार, 1 अप्रैल, 2022
5. 'अपनों पर न चले ताकत का जोर' लेख, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार, 5 अप्रैल, 2022

महिमा श्रीवास्तव एवं प्रो. प्रीती सक्सेना

भोजन का मानव अधिकार एवं अतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा : एक आकलन

परिचय : भोजन एक बुनियादी मानवीय आवश्यकता है जो सभी को जीवित रहने के लिए आवश्यक है। भोजन के अधिकार को अक्सर सबसे बुनियादी मानव अधिकार कहा जाता है और रहा है। इस अधिकार को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है। भोजन के अधिकार को संविधान में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि अनुच्छेद 21[1] के तहत गारंटीकृत जीवन का अधिकार इसका अभिन्न अंग है। इसके अलावा, संविधान का भाग 4 सार्वजनिक स्वास्थ्य और पोषण पर जोर देता है।

भोजन का अधिकार राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय क़ानून के तहत मान्यता प्राप्त मानव अधिकार है जो लोगों के भोजन और भोजन तक पहुँच के अधिकार की रक्षा करता है। भोजन का अधिकार लोगों के जीवन और सम्मान के अधिकार से जुड़ा हुआ है और इसके लिए आवश्यक है कि भोजन बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए उपलब्ध, सुलभ और पर्याप्त हो।[2]

भुखमरी और कुपोषण ऐसी दोहरी समस्याएँ हैं जिनसे दुनिया त्रस्त है और ये विकास के ग्राफ पर धब्बा बन गए हैं। हालाँकि कई देशों ने अब तक भूखमरी उन्मूलन के कार्य के प्रति अपनी निष्ठा का वचन दिया है। दुनिया में कई लोग जो ग़रीब हैं और वे मर रहे हैं क्योंकि उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता है। भारतीय परिदृश्य की सावधानीपूर्वक जांच यह दर्शाती है कि भारत में भुखमरी की समस्या भोजन के कारण नहीं बल्कि अनुपलब्धता, उचित खाद्य वितरण प्रणाली की कमी के कारण बनी हुई है।

भोजन का अधिकार

जैसाकि हम जानते हैं कि भोजन, आवास, वस्त्र मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। भोजन का अधिकार एक मौलिक अधिकार होने के नाते सभी को यह प्राप्त होना चाहिए। यह जीवन और स्वास्थ्य के अधिकार से निकटता से जुड़ा है। भोजन के अधिकार को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 और आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 में मान्यता दी गई है। यह अधिकार विभिन्न देशों के राष्ट्रीय संविधान और क्षेत्रीय संधियों द्वारा भी संरक्षित है। सुरक्षित भोजन तक पहुँच, पर्याप्त भोजन और भुखमरी से मुक्त होना सभी का मानव अधिकार है।[3]

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा

खाद्य सुरक्षा सभी मनुष्य को उनके जीवित रहने के लिए आवश्यक पोषण की गारंटीकृत पहुँच का एक साधन है। यह एक सक्रिय और स्वस्थ जीवन शैली जीने के लिए आहार की ज़रूरतों और भोजन की प्राथमिकताओं को पूरा करने वाले पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन के लिए भविष्य में भौतिक और आर्थिक पहुँच प्रदान करने की घरेलू या देश की क्षमता की स्थिति को संदर्भित करता है।

भोजन एक आवश्यक तत्व है जिसे जीने के लिए सभी मनुष्यों की पहुँच होनी चाहिए। न्यूनतम आवश्यक भोजन तक पहुँच जो पर्याप्त, पौष्टिक और सुरक्षित होने के साथ-साथ स्वीकार्य, शारीरिक रूप से सुलभ हो, बुनियादी मानव अधिकार माना जाता है।[4]

भोजन का अधिकार मानव अधिकार है। यह सभी मनुष्यों की भूख, खाद्य असुरक्षा और कुपोषण से मुक्त गरिमा के साथ जीने के अधिकार की रक्षा करता है। भोजन का अधिकार अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार और मानवीय क़ानून के तहत संरक्षित है। भोजन के अधिकार को नियमित स्थायी और अप्रतिबंधित पहुँच के अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है, या तो सीधे या वित्तीय ख़रीद के माध्यम से, मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से पर्याप्त और सुरक्षित भोजन उन लोगों की सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप है।[5]

वर्ष 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा जैसे उपकरणों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय क़ानून में भोजन के अधिकार को मान्यता दी गई है। लगभग तीन दशक बाद वर्ष 1976 में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा ने इसकी आवश्यकता पर बल दिया। उक्त अंतरराष्ट्रीय अनुबंध भोजन के अधिकार की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए किसी भी क्षेत्रीय या न्यायिक सीमाओं के बिना सहयोग करने के उपक्रम को सूचित करता है। इसलिए, सार्वभौमिक घोषणा में घोषित नागरिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों को अन्योन्याश्रित परस्पर संबंधित, अविभाज्य और समान रूप से महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

इस तथ्य के बावजूद कि भोजन का अधिकार अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार अनुबंधों और मानवतावादी क़ानूनों के तहत संरक्षित है, इसे विशिष्ट सम्मेलनों जैसे कि महिलाओं के ख़िलाफ़ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर सम्मेलन (CEDAW), बाल अधिकारों पर सम्मेलन (CRC), में मान्यता प्राप्त है। मानव अधिकार के उच्चायुक्त को रोम घोषणा के माध्यम से भोजन के अधिकार के निर्माण की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की समिति ने अपनी सामान्य टिप्पणी 12 में आईसीईएससीआर में प्रदान किए गए भोजन के अधिकार को परिभाषित किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने और अपने परिवार के लिए पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आवास सहित पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार की मान्यता प्राप्त है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायुक्त कार्यालय (ओएचसीएचआर), 1993 भी भोजन के अधिकार के बारे में बात करता है।[6]

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा जो भोजन के अधिकार को अभिव्यक्त करती है। भोजन का अधिकार मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 25 के तहत एक बुनियादी स्वतंत्रता है। वह भोजन एवं नैदानिक विचार और सामाजिक प्रशासन के लिए संतोषजनक व्यवस्था स्थापित करेगा। अनुच्छेद 25 प्रावधान करता है कि हर किसी को अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य और भलाई के लिए पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार है जिसमें भोजन, कपड़ा, आवास, चिकित्सा देखभाल, आवश्यक सामाजिक सेवाएँ और रोज़गार की स्थिति में सही सुरक्षा शामिल है।[7] इसे खाद्य सुरक्षा से अलग किया जा सकता है क्योंकि यह स्वास्थ्य की आवश्यकता को पूरा करके संरक्षित और पौष्टिक भोजन की ओर जाता है। यह भूख से मुक्त तथा पर्याप्त भोजन तक पहुँच के अधिकार को सुनिश्चित करता है।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966

सन् 1966 में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों (आईसीईएससीआर) पर अंतरराष्ट्रीय वाचा में भोजन के अधिकार को मान्यता दी गई और यह 1976 में लागू हुआ। आईसीईएससीआर ने भोजन के अधिकार को और स्पष्ट किया। अनुच्छेद 11 में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने और अपने परिवार के लिए पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आवास सहित पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार को मान्यता देते हैं।[8] जैसाकि अनुच्छेद 11(2) में देखा गया है कि पर्याप्त भोजन के अधिकार सहित आईसीईएससीआर में प्रस्तुत अधिकारों की प्राप्ति की दिशा में काम करने के लिए दलों का क़ानूनी रूप से बाध्यकारी दायित्व है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र की समिति (आईसीईएससीआर) ने कहा है कि भोजन की उपलब्धता मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों तरह से पर्याप्त होनी चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति भोजन के अपने मौलिक अधिकार को प्राप्त करने में सक्षम हो सके। इसके अतिरिक्त, आईसीईएसीआर ने कहा कि राज्यों को सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में भूख के अधिकार के बारे में शिक्षित करने के लिए काम करना चाहिए।[9]

भूख और कुपोषण के उन्मूलन पर सार्वभौमिक घोषणा, 1974

प्रथम विश्व खाद्य सम्मेलन जो नवंबर 1974 में रोम में आयोजित किया गया था, इसने प्रत्येक पुरुष, महिला और बच्चे को अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को पूर्ण विकसित करने और बनाए रखने के लिए भूख और कुपोषण से मुक्त होने का अविच्छेद अधिकार दिया।[10] घोषणा में कहा गया है कि यह सरकारों की मौलिक जिम्मेदारी है कि "उच्च खाद्य उत्पादन और देशों के बीच भोजन के अधिक न्यायसंगत और कुशल वितरण के लिए मिलकर काम करें।" इसके अलावा, "कमज़ोर और निम्न आय वर्ग के बीच पुराने पोषण और कमी की बीमारियों" को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। संक्षेप में, "यह संपूर्ण अंतरराष्ट्रीय समुदाय की

सामान्य जिम्मेदारी है कि वह आपातकालीन भंडार सहित उचित भंडार के माध्यम से बुनियादी खाद्य की पर्याप्त विश्व आपूर्ति की हर समय उपलब्धता सुनिश्चित करें।" सभी देशों को एक प्रभावी विश्व खाद्य सुरक्षा की व्यवस्था की स्थापना में सहयोग करना चाहिए।[11]

बाल अधिकारों पर सम्मेलन, 1989

बाल अधिकारों पर सम्मेलन में कहा गया है कि स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्य मानक के लिए बच्चे के अधिकारों में पर्याप्त पौष्टिक भोजन, स्वच्छ पेयजल और स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधान के माध्यम से बीमारी और कुपोषण से निपटने के लिए उचित उपाय किए जाएँगे। राज्य पक्ष भी उचित उपाय करेगा "यह सुनिश्चित करने के लिए कि समाज के सभी वर्गों, विशेष रूप से माता-पिता और बच्चों को सूचित किया जाता है शिक्षा तक उनकी पहुँच है और उन्हें बाल स्वास्थ्य पोषण और स्तनपान के लाभों के बुनियादी ज्ञान के उपयोग में सहायता मिलती है।"[12] संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन ने बड़ी संख्या में आधिकारिक अंतरराष्ट्रीय उपकरणों की पहचान की है जो पर्याप्त भोजन के मानव अधिकारों को संबोधित करते हैं।[13]

विश्व घोषणा और पोषण के लिए कार्य योजना, 1992

सन् 1992 की विश्व घोषणा और पोषण के लिए कार्य योजना ने 159 देशों के बीच आम सहमति का प्रतिनिधित्व किया, कि दुनिया में भूख और कुपोषण के स्तर अस्वीकार्य है जिसके पास इस मानव तबाही को समाप्त करने के लिए ज्ञान और संसाधन दोनों है। 1992 की घोषणा ने दोहराया कि पर्याप्त भोजन का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है और भोजन तक पहुँच मुख्य समस्या है। घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाले 159 देशों ने समाधान खोजने के लिए मिलकर काम करने का संकल्प लिया। उनके मुख्य उद्देश्य थे -- (1) सभी के लिए पोषण की दृष्टि से पर्याप्त आहार लेने के लिए भोजन की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करना (2) सभी के लिए इष्टतम स्वास्थ्य और पोषण प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए कार्य करना (3) भोजन, स्वास्थ्य और पोषण में योगदान करने के लिए पर्यावरण की दृष्टि से एक स्वस्थ और टिकाऊ तरीका प्राप्त करना (4) अकाल और अकाल से संबंधित मौतों के अस्तित्व को समाप्त करना।[14]

विश्व खाद्य सुरक्षा पर रोम घोषणा, 1996

विश्व खाद्य सुरक्षा पर 1996 की रोम घोषणा ने 2015 तक दुनिया में भूखे लोगों की संख्या को आधा करने के लिए अपने हस्ताक्षरकर्ताओं को प्रतिबद्ध किया। यह ग़रीबी उन्मूलन, पोषक रूप से पर्याप्त और सुरक्षित भोजन प्रदान करने और निष्पक्ष कृषि व्यापार को बढ़ावा देने, के लिए भी प्रतिबद्ध है। इसका उद्देश्य आपातकालीन खाद्य आपूर्ति, ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने और अंतरराष्ट्रीय समुदाय के भीतर सहयोग पैदा करना हैं।[15]

महासभा संकल्प 51/71, 1997 खाद्य और सतत कृषि विकास

1997 के महासभा के इस प्रस्ताव ने माना कि खासकर महिलाओं, बच्चों और विकासशील देशों के लोगों में भूख की समस्या व्यापक और पुरानी है। संकल्प ने यह भी माना कि अंतरराष्ट्रीय क़ानून के तहत भूख से मुक्त होने का अधिकार एक मानव अधिकार है और अंतरराष्ट्रीय समुदाय, संयुक्त राष्ट्र से विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन की कार्य योजना को लागू करने के लिए सहयोग लाने का आग्रह करता है।[16]

खाद्य सहायता सम्मेलन, 1999

सम्मेलन के चार मुख्य उद्देश्य है -- (1) पूर्वानुमेय आधार पर खाद्य सहायता के उपयुक्त स्तर उपलब्ध कराना; (2) सदस्य राष्ट्रों को यह सुनिश्चित करने के लिए प्रोत्साहित करना कि प्रदान की जाने वाली खाद्य सहायता विशेष रूप से सबसे कमज़ोर समूहों की ग़रीबी और भूख को कम करने के उद्देश्य से है और उन देशों में कृषि विकास के अनुरूप है; (3) खाद्य सुरक्षा के समर्थन में एक उपकरण के रूप में प्रदान की गई खाद्य सहायता के प्रभाव, प्रभावशीलता और गुणवत्ता को अधिकतम करने के सिद्धांत शामिल हैं; और (4) सदस्यों के बीच सहयोग, समन्वय और सूचना-साझाकरण के लिए एक रूपरेखा प्रदान करें ताकि खाद्य सहायता संचालन के सभी पहलुओं में अधिक दक्षता प्राप्त की जा सके और खाद्य सहायता और अन्य नीतिगत उपकरणों के बीच बेहतर तालमेल हो सके।[17] संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य, 2000 का प्राथमिक विकास लक्ष्य ग़रीबी और भुखमरी को समाप्त करना।

विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन, 2002 की घोषणा[18]

5 साल बाद विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन की 2002 की घोषणा ने सुरक्षित और पौष्टिक दोनों तरह के भोजन तक पहुँचने के अधिकार की पुष्टि की और 1996 की घोषणा में की गई प्रतिबद्धताओं को नवीनीकृत किया गया ताकि वर्ष 2015 तक दुनिया में भूखे लोगों की संख्या आधी हो जाए। 2002 का शिखर सम्मेलन रोम में हुआ था जब लगभग 182 देशों ने भोजन के अधिकार के विचार का विरोध किया था।

इस शिखर सम्मेलन के दौरान, एएफओ ने भूखरोधी कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जहाँ उनके द्वारा यह पता लगाया गया कि यदि सब्सिडी पर पैसे में कटौती की जाती है तो इसका उपयोग बेहतर उत्पादों और खाद्य उत्पादन पर किया जा सकता है जिससे भोजन का अधिक उत्पादन होगा और लोगों को मदद मिलेगी।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा, 2004 के संदर्भ में पर्याप्त भोजन के अधिकार की प्रगतिशील प्राप्ति का समर्थन करने के लिए स्वैच्छिक दिशा-निर्देश

स्वैच्छिक दिशानिर्देशों के अनुसार, खाद्य सुरक्षा तब महसूस होती है जब सभी लोगों के लिए हर समय सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो। इसमें न केवल भोजन तक भौतिक

पहुँच शामिल है, बल्कि आर्थिक पहुँच भी शामिल है। उपलब्ध भोजन से लोगों की आहार संबंधी ज़रूरतों को भी पूरा करना चाहिए ताकि वे स्वस्थ और सक्रिय जीवन जी सके। स्वैच्छिक दिशानिर्देश खाद्य सुरक्षा के चार स्तंभों को पहचानते हैं -- (1) भोजन की उपलब्धता, (2) आपूर्ति की स्थिरता, (3) भोजन तक पहुँच; और (4) उपलब्ध भोजन का उपयोग। इन दिशानिर्देशों के अनुपालन के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (आईसीईएससीआर) और संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूडीएचआर) के तहत मानव अधिकार दायित्वों की पूर्ति की आवश्यकता है।[19]

अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून

इसके तहत मुख्य रूप से उन देशों में भोजन के अधिकार से संबंधित कई प्रावधान है जहाँ युद्ध का प्रकोप है। अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून, स्वयं उन देशों के बीच युद्ध के संचालन और विनियमन से संबंधित है। उनका प्रमुख एजेंडा नागरिकों की रक्षा करना है। चौथे जिनेवा कन्वेंशन के अनुच्छेद 14 के तहत इस बात पर जोर दिया गया है कि कोई भी तरीका जिसके परिणामस्वरूप किसी भी फसल, कृषि, उपज आदि को हटाने या नष्ट करने में नागरिक भूखा हो, निषिद्ध होगा। एक देश की आबादी को नष्ट करने के लिए इस पद्धति का उपयोग अवैध माना जाता है। खाद्य उत्पादों को हटाना किसी भी युद्ध में नागरिकों के ख़िलाफ़ हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय मानवीय क़ानून भूख उन्मूलन में प्रभावी योगदान देता है।

नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय वाचा, 1966[20]

अनुच्छेद 6 यह निर्धारित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का अधिकार है। इस अधिकार को क़ानून द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए, कोई भी अपने आप को मनमाने ढंग से जीवन से वंचित नहीं कर सकता। जीवन के अधिकार को क़ानून द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए। प्रत्येक के जीवन के अधिकार की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य है और राज्य के माध्यम से इस अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए।

खाद्य सहायता समझौता, 2012

इस सम्मेलन का उद्देश्य जीवन को बचाना, भूख को कम करना, खाद्य सुरक्षा में सुधार करना और सबसे कमज़ोर आबादी की पोषण स्थिति में सुधार करना है। यह सुनिश्चित करना कि पौष्टिक भोजन तक पहुँच तथा कमज़ोर लोगों को खाद्य सहायता प्रदान की जाए। इसके कुशल एवं सुसंगत उपयोग के लिए और इस पर चर्चा करने के लिए एक मंच की आवश्यकता है।[21]

संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास लक्ष्य, 2015

सतत् विकास लक्ष्य 2 (SDG 2 या वैश्विक लक्ष्य 2) का उद्देश्य 'शून्य भूख' प्राप्त

करना है। यह 2015 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्थापित 17 सतत् विकास लक्ष्यों में से एक है। आधिकारिक शब्द है : "भूख को समाप्त करें, खाद्य सुरक्षा और बेहतर पोषण प्राप्त करें और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा दें।"[22] एसडीजी 2 ''खाद्य सुरक्षा, पोषण, ग्रामीण परिवर्तन और टिकाऊ कृषि के बीच जटिल अंतर-संबंधों'' पर प्रकाश डालता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, लगभग 690 मिलियन लोग भूखे हैं जो दुनिया की आबादी का 10 प्रतिशत से थोड़ा कम है। दक्षिण सूडान, सोमालिया, यमन और नाइजीरिया में वर्तमान में अकाल के जोखिम वाले 20 मिलियन लोगों सहित, हर नौ में से एक व्यक्ति हर रात भूखा सोता है।

एसडीजी 2 में प्रगति को मापने के लिए आठ लक्ष्य और 14 संकेतक हैं। पाँच परिणामी लक्ष्य हैं : भूख को समाप्त करना और भोजन तक पहुँच में सुधार करना, कुपोषण के सभी रूपों को समाप्त करना, कृषि उत्पादकता, टिकाऊ खाद्य उत्पादन प्रणाली और लचीली कृषि पद्धतियाँ; और बीज, खेती वाले पौधों और खेती और पालतू पशुओं की आनुवंशिक विविधता, निवेश, अनुसंधान और प्रौद्योगिकी।

दशकों तक गिरने के बाद 2015 से कुपोषण बढ़ रहा है। यह मुख्य रूप से खाद्य प्रणालियों में विभिन्न तनावों का परिणाम है जिसमें शामिल हैं; जलवायु के झटके, टिड्डी संकट और कोविड-19 महामारी। वे ख़तरे अप्रत्यक्ष रूप से क्रय शक्ति और भोजन के उत्पादन और वितरण की क्षमता को कम करते हैं जो सबसे कमज़ोर आबादी को प्रभावित करता है और इसके अलावा भोजन तक उनकी पहुँच को कम कर देता है।

दुनिया 2030 तक जीरो हंगर हासिल करने के रास्ते पर नहीं है। "बढ़ती भूख और खाद्य असुरक्षा के संकेत एक चेतावनी है कि यह सुनिश्चित करने के लिए काफी काम किया जाना है कि दुनिया किसी को भी पीछे न छोड़े" शून्य भूख के साथ। "यह संभावना नहीं है कि 2030 तक कुपोषण का अंत हो जाएगा।[23]

2019 के डेटा से पता चला है कि "विश्व स्तर पर, 9 में से 1 व्यक्ति कुपोषित है, जिनमें से अधिकांश विकासशील देशों में रहते हैं। पोषण के तहत दुनिया भर में 52 मिलियन बच्चों की बर्बादी या गंभीर बर्बादी होती है।"[24]

विश्व खाद्य नीति, 2017 पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन

थाईलैंड की नेशनल असेंबली की विदेशी मामलों की समिति और नीति अध्ययन संगठन (पीएसओ) के साथ मिलकर रॉयल सोसाइटी ऑफ थाईलैंड (आरएसटी) ने 16-17 जनवरी के दौरान बैंकॉक में 2017 विश्व खाद्य नीति सम्मेलन का आयोजन किया। विश्व खाद्य नीति पर सम्मेलन ने खाद्य अर्थव्यवस्था और नीति के वैश्विक और क्षेत्रीय दृष्टिकोणों पर प्रासंगिक शोध निष्कर्षों पर चर्चा करने और साझा करने के लिए नीति निर्माताओं और विद्वानों को एक साथ लाएँ। इसके द्वारा खाद्य सुरक्षा के विषयों के तहत बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका की चर्चा की गई।

भोजन के अधिकार से संबंधित अन्य अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज

भोजन का अधिकार अन्य अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार दस्तावेज़ों में भी देखने को मिलता हैं जो महिलाओं, बच्चों एवं अल्पसंख्यकों के लिए विशेष सुरक्षा निर्धारित करता है। इन दस्तावेज़ों में शामिल हैं --

- संयुक्त राष्ट्र चार्टर
- वियना घोषणा और कार्यवाही का कार्यक्रम
- युद्ध के समय में नागरिकों के संरक्षण से संबंधित जेनेवा कन्वेंशन 4
- विकास के अधिकार पर घोषणा
- बाल अधिकारों पर कन्वेंशन
- युद्ध के कैदियों के उपचार के संबंध में जेनेवा कन्वेंशन 3
- बच्चों की उत्तरजीविता, संरक्षण और विकास पर विश्व घोषणा (1990)[25]
- महिलाओं के ख़िलाफ़ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन[26]
- विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर कन्वेंशन
- क़ैदियों के इलाज के लिए मानक न्यूनतम नियम
- बाल अधिकार और कल्याण पर अफ्रीकी चार्टर (1990)
- सामाजिक प्रगति और विकास पर घोषणा
- कृषि विकास के लिए अंतरराष्ट्रीय कोष की स्थापना पर समझौता
- महासभा द्वारा उद्घोषित आपातकाल और सशस्त्र संघर्ष में महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा पर घोषणा 3318(xxx) दिसंबर 1974

कुछ देशों में भोजन के अधिकार पर क़ानूनी प्रावधान

संविधान किसी देश में भोजन के अधिकार की मान्यता में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भोजन के अधिकार को कुछ देशों के संविधान में सीधे परिभाषित किया गया है। जहाँ बाकी देशों में इसे अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की नीतियों के सिद्धांतों और मानव अधिकारों और न्यायपालिका को व्यापक व्याख्या के माध्यम से मान्यता दी। भोजन के अधिकार के संवैधानिक और क़ानूनी प्रावधान वाले देशों की सूची में बेलारूस, [27] बोलिविया, [28] ब्राजील, [29] कोलंबिया, [30] कोस्टा(4), [31] क्यूबा(15), [32] इक्वाडोर(16), [33] केन्या, [34] मेक्सिको, [35] नेपाल, [36] पनामा, [37] दक्षिण अफ्रीका, [38] यूक्रेन, [39] श्रीलंका, [40] और संयुक्त राज्य अमेरिका[41] आदि शामिल हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रम[42]

- घरेलू पोषण सहायता कार्यक्रम
- पूरक पोषण सहायता कार्यक्रम
- महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष पोषण कार्यक्रम
- नेशनल स्कूल लंच प्रोग्राम

- नेशनल ब्रेकफास्ट प्रोग्राम

अंत में यह कहा जा सकता है कि भोजन का अधिकार एक मानव अधिकार है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा का आंकलन विभिन्न घोषणाओं तथा सम्मेलनों के द्वारा किया गया है, जिनमें कहा गया है कि हर किसी को अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य और भलाई के लिए पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार है जिसमें भोजन, कपड़ा, आवास, चिकित्सकीय देखभाल और रोज़गार की सुरक्षा शामिल है। भोजन के अधिकार को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्यता प्रदान की गई है। अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान के ग्लोबल हंगर इंडेक्स, 2022 के अनुसार भारत की खाद्य सुरक्षा की स्थिति 'ख़तरनाक' बनी हुई है। यह दुनिया के 121 देशों में से 107वें स्थान पर है।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स का भारत की खाद्य सुरक्षा की स्थिति के बारे में यह मूल्यांकन बहुत भ्रामक और बेतुका है। क्या ग्लोबल हंगर इंडेक्स तैयार समय भारत के संदर्भ में इस तथ्य को ध्यान में रखा गया कि कोरोना संकट काल से यहाँ की 80 प्रतिशत जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में मुफ्त राशन उपलब्ध किया जा रहा है? क्या ग्लोबल हंगर इंडेक्स बनाते समय भारत की दो तिहाई जनसंख्या को मिल रहे मुफ्त राशन की आपूर्ति को ध्यान में नहीं रखा गया? अगर रखा गया होता तो भारत के संबंध में ग्लोबल हंगर इंडेक्स का ऐसा भ्रामक यह नतीजा नहीं निकलता। अतः विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति आशा से अधिक संतोषजनक है ख़तरनाक नहीं। इस संदर्भ में भारत की स्थिति सभी देशों की तुलना में संतोषजनक होगी। अभी हाल में यू.एन.डी.पी. की रिपोर्ट के अनुसार यह कहा गया है कि भारत में 415 मिलियन लोग गरीबी से बाहर निकले हैं। ग्लोबल हंगर इंडेक्स मूल्यांकन करते समय क्या इन सभी तथ्यों को ध्यान में नहीं रखता?

❑

संदर्भ

1. The Constitution of India 1950, article 21 "Protection of life and Personal Liberty".
2. Sanjeeve Ghowda, "The Right to Food in India : A Constitutional Perspective," International Journal of Law, available at:https://ijlljs.in/wp-content.pdf. 2016
3. The Right to Adequate Food, available at: https://www .ohchr.org>(visited on December 1, 2022)
4. Dr. Surinder Kaur, "Right to Food for Human Race : The Biggest challenge of 21st century 2013"
5. भोजन के अधिकार पर अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य, उपलब्ध है -- https://www.legalserviceindia.com>(visited on Feb 11, 2023)

6. Ibid
7. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948, अनुच्छेद 25
8. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1996, अनुच्छेद 11, 11(2)
9. Fao, Guide on Legislating for Right to Food 25-26 (2009) available at : https://www.fao.org/>
10. United Nation General Assembly Resolution 3348, (xxix of Dec 17, 1974)
11. Ibid
12. Convention on the Righs of Child, 1990, art 24 (paragraph 1)
13. Ibid
14. पोषण पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन, दिसंबर 1992, पोषण के लिए विश्व घोषणा और कार्य योजना उपलब्ध है -- https://Whqlibdoc .who.int/HQ/1992.pdf
15. विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन 1996, विश्व खाद्य सुरक्षा पर रोम घोषणा -- https://www.chesateafao.it.pdf
16. G.A. Res . 51/71,UN. Doc, available at: https://www.un.org/>
17. खाद्य सहायता सम्मेलन 1999, उपलब्ध है -- https://www.fao.org/>
18. विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन 2002 की घोषणा उपलब्ध है -- https://www.fao.org/>
19. विश्व खाद्य सुरक्षा समिति, नवंबर 22, 2004 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा, 2004 के संदर्भ में पर्याप्त भोजन के अधिकार की प्रगतिशील प्राप्ति का समर्थन करने के लिए स्वैच्छिक दिशा-निर्देश उपलब्ध है -- https://www.fao.org/>
20. उच्चायुक्त का संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार कार्यालय से लिया गया उपलब्ध है -- https://www.ohchr.org>(visited on Feb 12, 2023).
21. available at: https://www.ifrc.org/>
22. संयुक्त राष्ट्र (2015) 25 सितंबर, 2015 को महासभा द्वारा अपनाया गया संकल्प हमारी दुनिया को बदलना : सतत् विकास के लिए 2030 एजेंडा -- available at: https://en.m.wikipedia.org/wiki/File:N1529189.pdf
23. available at: https://www.un.org/sustainabledevelopment/hunger/>
24. available at: https://www.lpsonet.org/publication/open-access/world-food-policy/>
25. available at: https://www.ohchr.org/>
26. available at: https://www.un.org/women/cedaw/convention.html/>

27-29. Article 21(2), Article 16, Article 6, 7(a)

30-38. Article 44, Article 82, Article 8, Article 13, Article 43(e), Article 4, Article 18(3), Article 56, Article 27, 28(c)

39. Article 48
40. Article 27
41. Maria Chilton and Donald Rose “A Right based approach” from, available at:https://www.ncbi.nih.gov/pmc/articles >(visited on February 20, 2023).
42. Ibid

नेहा राठी

यूथनेशिया एवं मानव अधिकार

मरते हैं आरजू में मरने की, मौत आती है पर नहीं आती
--मिर्ज़ा ग़ालिब

यूथनेशिया यानी इच्छा-मृत्यु या मर्सी किलिंग या अन्य शब्दों में कहें तो अपने जीवन को समाप्त करने का अधिकार। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि वह एक लंबा, स्वस्थ और सुखद जीवन जिए। लेकिन कतिपय परिस्थितियों में व्यक्ति स्वयं अपना जीवन समाप्त करने को विवश हो जाता है। किसी व्यक्ति के जीवन का अंत स्वयं दो तरीकों से हो सकता है या तो आत्महत्या, या फिर इच्छा-मृत्यु द्वारा। जब कोई व्यक्ति अपने कृत्य से अपना जीवन समाप्त करता है तो इसे आत्महत्या कहा जाता है लेकिन जब किसी व्यक्ति के जीवन को उस व्यक्ति विशेष द्वारा किए गए अनुरोध पर दूसरों के द्वारा समाप्त किया जाता है तो इसे यूथनेशिया या मर्सी किलिंग कहा जाता है। ''यूथनेशिया शब्द का व्युत्पन्न ग्रीक शब्द 'यू' और 'थानोस' शब्द से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ इच्छा-मृत्यु है। अन्य शब्दों में इसे दया मृत्यु कहा गया है।"[1] इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग रोमन इतिहासकार सुएटोनियस ने 'ऑन द लाइव्स ऑफ द कैसर' में किया था।

''For almost always on hearing that anyone had died swiftly and painlessly, he prayed that he and his might have a like euthanasia, for that was the term he was wont to use."[2]

इच्छा-मृत्यु की अवधारणा को पहले 17वीं शताब्दी के दौरान सर फ्रांसिस बेकन द्वारा तैयार किया गया था। ''ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांसिस बेकन द्वारा 17वीं शताब्दी में शब्द का प्रयोग आसान दर्द रहित और सुख मृत्यु के लिए निर्देशित किया गया था जिसके लिए चिकित्सक का यह कर्त्तव्य और दायित्व था कि वह रोगी के शरीर की शारीरिक पीड़ा को दूर करें।"[3] यूथनेशिया मुख्य रूप से उन लोगों से संबंधित है जिन्हें लाइलाज बीमारी है या जो अक्षम हो चुके हैं और अपने शेष जीवन में कष्टों से नहीं गुजरना चाहते हैं। इच्छा-मृत्यु के पक्ष में खड़े लोगों का तर्क है कि व्यक्ति के शरीर पर केवल उसका अधिकार है। यदि बीमारी के कारण व्यक्ति का दर्द सहन शक्ति की सीमा से ऊपर जा चुका है, तो उस व्यक्ति को इच्छा-मृत्यु के जरिये दर्द से मुक्ति पाने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

मानव इतिहास में इच्छा-मृत्यु की अवधारणा प्राचीनकाल से चली आ रही है। भारतीय शास्त्र-पुराण भी इससे अछूते नहीं हैं। भगवान श्रीराम से भेंट होने और कुटिया से उनके प्रस्थान के पश्चात् शबरी का स्वयं को योगाग्नि में भस्म कर लेना इच्छा-मृत्यु का ही एक रूप है। इच्छा-मृत्यु के वरदान स्वरूप ही महाभारत युद्ध के दौरान बाण-शैय्या पर पड़े भीष्म पितामह ने सूर्य के उत्तरायण होने पर ही अपने प्राण त्यागे थे। जैन धर्मावलंबियों में संथारा की प्रथा भी इच्छा-मृत्यु का ही एक प्रकार कहा जाता है। यह परंपरा बरसों से प्रचलित है। आचार्य विनोबा भावे ने अपने अंतिम दिनों में इच्छा-मृत्यु का वरण किया जब उन्होंने स्वयं पानी लेने तक का त्याग कर दिया था। इंदिरा गांधी उन्हें देखने के लिए गई थीं। तब वहाँ मौजूद पत्रकारों की यह माँग ठुकरा दी गई थी कि भावे जी को अस्पताल में दाखिला किया जाए।

वर्तमान समय में यूथनेशिया का अर्थ अत्यंत गंभीर बीमारियों अथवा असाध्य कष्टों से मुक्ति पाने हेतु इच्छा-मृत्यु का वरण करना है और इसे वैध ठहराया जाए या नहीं, यह एक गंभीर बहस का मुद्दा बना हुआ है।

यूथनेशिया अथवा इच्छा-मृत्यु के प्रकार; इच्छा-मृत्यु के प्रमुखतः दो प्रकार हैं :

(i) **सक्रिय इच्छा-मृत्यु (एक्टिव यूथेनेशिया) :** इस स्थिति में इच्छा-मृत्यु माँगने वाले व्यक्ति को इस कृत्य में सहायता प्रदान की जाती है, जैसे-जहरीला इंजेक्शन लगाना या पेन किलर का ओवरडोज देना। ''सक्रिय इच्छा-मृत्यु में घातक तत्व अर्थात् सोडियम पेंटाथाल से रोगी को सुई लगाना जैसे क़दम लेना अंतर्वलित है जो कुछ सेकेंडों में व्यक्ति को गहरी नींद में सुला देता है और वह दर्द के बिना निद्रा में मर जाता है।''[4]

(ii) **निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु (पैसिव यूथेनेशिया) :** इस स्थिति में इच्छा-मृत्यु के लिए किसी प्रकार की कोई सहायता प्रदान नहीं की जाती। ''इसके अंतर्गत चिकित्सा उपचार को रोक देना या प्राण चलने की जीवन रक्षक प्रणाली को रोक देना, एंटीबायोटिक को रोक देना जहाँ इसके बिना रोगी की मृत्यु हो जाने की संभावना है या मूर्छा के रोगी की हृदय फेफडा मशीन को हटाना सम्मिलित है।''[5]

सरल शब्दों में कहें तो एक्टिव यूथेनेशिया वह है जिसमें मरीज़ की मृत्यु के लिए कुछ किया जाए, जबकि पैसिव यूथेनेशिया वह है जहाँ मरीज़ की जान बचाने के लिए कुछ न किया जाए। निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु में असाध्य कष्ट झेल रहे व्यक्ति का इलाज रोक दिया जाता है अथवा जीवन रक्षक प्रणालियाँ यथा-वेंटिलेटर आदि कीं सुविधाएँ हटा दी जाती है, जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है, जबकि सक्रिय इच्छा-मृत्यु में रोगी की पूर्ण सहमति के पश्चात् चिकित्सक दवा देकर उसकी जीवन लीला समाप्त करते हैं।''उच्चतम न्यायालय के उल्लेख के अनुसार सक्रिय इच्छा-मृत्यु और निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु के बीच का अंतर का मुख्य बिंदु यह है कि सक्रिय इच्छा-मृत्यु में रोगी का जीवन समाप्त करने के लिए कुछ किया जाता है जबकि निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु में ऐसा कुछ नहीं किया जाता जिससे रोगी के जीवन को सुरक्षित रखा जाता हो।''[6] निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु के ही आगे दो प्रकार होते हैं :--

(i) स्वैच्छिक इच्छा-मृत्यु (ii) ग़ैर-स्वैच्छिक इच्छा-मृत्यु

''स्वैच्छिक इच्छा-मृत्यु वह है जहाँ यहाँ रोगी से सहमति ली जाती है। ग़ैर-स्वैच्छिक सुख मृत्यु में रोगी की दशा के कारण उदाहरणार्थ जब वह मूर्छा में है सहमति अनुपलब्ध है।''[7]

यूथनेशिया की वैधता : एक वैश्विक दृष्टिकोण

यूथेनेसिया दुनियाभर में बहस का मसला बना हुआ है। उल्लेखनीय है कि पूरे विश्व में कहीं ऐसा क़ानून नहीं है कि रोगी द्वारा मानसिक रूप से मृत्यु की स्वीकृति दिए बिना दवा का प्रयोग कर उसके जीवन पर हमेशा के लिए विराम लगाया जा सके। काफी मुल्कों में इसे क़ानूनी मान्यता मिल गई है जबकि कई देश इस तरह के क़ानून बनाए जाने के ख़िलाफ़ हैं। उनका मानना है कि यह मानवीयता और इंसानी असूल के ख़िलाफ़ है कि जिसे हम जिंदगी नहीं दे सकते उसे मौत देने का हमें क्या अधिकार है। विश्व में सर्वप्रथम वर्ष 1996 में ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी राज्य में इच्छा-मृत्यु का अधिकार प्रदान किया गया, किंतु अगले ही वर्ष इस पर पुनः रोक लगा दी गई। दुनिया के सबसे विकसित देश अमेरिका में सक्रिय इच्छा-मृत्यु ग़ैर-क़ानूनी है लेकिन वॉशिंगटन और मोंटाना राज्यों में डॉक्टर की सलाह और उसकी मदद से मरने की इज़ाज़त है जबकि स्विट्ज़रलैंड में जहरीली सुई देकर आत्महत्या करने की इज़ाज़त है, हालाँकि यहाँ भी इच्छा-मृत्यु ग़ैर-क़ानूनी है। नीदरलैंड में भी डॉक्टरों के हाथों सक्रिय इच्छा-मृत्यु और मरीज़ की मर्जी से दी जाने वाली मृत्यु की अनुमति है। बेल्जियम में 2002 में इच्छा-मृत्यु को वैधानिक मान्यता मिल चुकी है लेकिन ब्रिटेन, स्पेन, फ्रांस और इटली जैसे यूरोपीय देशों सहित दुनिया के ज्यादातर देशों में इच्छा-मृत्यु आज भी ग़ैर-क़ानूनी है।

भारत में यूथनेशिया

भारत में कभी न ठीक होने वाले असह्य कष्ट एवं अत्यंत गंभीर बीमारियों से ग्रस्त व्यक्ति हेतु इच्छा-मृत्यु का अधिकार दिए जाने की माँग वर्षों से की जा रही है। भारत में इच्छा-मृत्यु निसंदेह अवैध है। चूँकि इच्छा-मृत्यु या मर्सी किलिंग के मामलों में डॉक्टर की ओर से रोगी को मारने का इरादा होता है, ऐसे मामले स्पष्ट रूप से भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300 के पहले खंड के तहत आते हैं। किंतु इस संबंध में चिकित्सक को उक्त धारा के अपवाद 5 का लाभ मिलेगा और डॉक्टर या दया हत्यारा धारा 304 के तहत ग़ैर-इरादतन हत्या के लिए दंडनीय होगा। लेकिन यह केवल स्वैच्छिक इच्छा-मृत्यु के मामले हैं (जहाँ रोगी मृत्यु के लिए सहमति देता है)। ग़ैर-स्वैच्छिक और अस्वैच्छिक इच्छा-मृत्यु के मामले आईपीसी की धारा 92 के परंतुक एक के तहत आते हैं अतः यह ग़ैर-क़ानूनी हैं। असिस्टेड सुसाइड (सहायता प्राप्त आत्महत्या) के विषय पर भारत में क़ानून बहुत स्पष्ट है। आत्महत्या का अधिकार भारत में उपलब्ध नहीं है -- यह भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत दंडनीय है। आत्महत्या को दंडित करने का प्रावधान धारा 305 (बच्चे या पागल व्यक्ति को आत्महत्या के लिए उकसाना), 306 (आत्महत्या के लिए उकसाना) और उक्त संहिता की धारा 309 (आत्महत्या करने का

प्रयास) में निहित है। धारा 309, आईपीसी को इसकी संवैधानिकता के संबंध में जाँच के दायरे में लाया गया है।

वर्ष 1996 में **ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संविधान के अनुच्छेद-21 के अंतर्गत मानवीय गरिमा के साथ जीने के अधिकार में मृत्यु पाने का अधिकार सम्मिलित नहीं है। इसका उल्लंघन कर मृत्यु का वरण करने की कोशिश करने वाले को आईपीसी की धारा-306 एवं 309 के अंतर्गत आत्महत्या के प्रयास का दोषी माना जाएगा।

''हालाँकि इससे पहले 26 अप्रैल, 1994 को उच्चतम न्यायालय की दो जजों की बेंच ने भी इच्छा-मृत्यु का समर्थन करते हुए आईपीसी की धारा 306 (आत्महत्या के लिए उकसाने) को असंवैधानिक करार दिया था। पीठ ने कहा था कि संविधान के अनुच्छेद 21 में जीने के अधिकार के साथ मरने का अधिकार भी मौलिक अधिकार के रूप में निहित है लेकिन इसके दो साल बाद 21 मार्च, 1996 को पाँच जजों की संविधान पीठ ने **ज्ञान कौर बनाम भारत सरकार** के मामले में इस फ़ैसले को पलटते हुए कहा कि इच्छा-मृत्यु और किसी की मदद से आत्महत्या देश में ग़ैर-क़ानूनी हैं।''[8] 2008 में विधि आयोग ने अपनी 210वीं रिपोर्ट में इस प्रावधान को खत्म करने की सिफ़ारिश की थी।[9] 2000 में केरल हाईकोर्ट ने कहा कि इच्छा-मृत्यु की अनुमति देना आत्महत्या को स्वीकार करने के बराबर होगा।[10]

वर्ष 2011 में **अरुणा शानबाग** मामले से इच्छा-मृत्यु के अधिकार की वैधता और अवैधता पर एक बार फिर से बहस तेज हो गई। मुंबई के एक अस्पताल में नर्स के रूप में कार्यरत अरुणा शानबाग के गले में जंजीर बाँधकर उसी अस्पताल के वार्डबॉय ने नवंबर, 1973 में उस के साथ दुष्कर्म किया था जिसके बाद से शानबाग मृतप्रायः अवस्था में अस्पताल में भर्ती थी। पीड़िता की लेखिका मित्र ने कोमा में जीवन बिताने वाली शानबाग हेतु उच्चतम न्यायालय में इच्छा-मृत्यु की अर्जी दी थी। उच्चतम न्यायालय ने याचिका को स्वीकार कर लिया और तुरंत एक मेडिकल बोर्ड का गठन किया जिसमें तीन प्रतिष्ठित डॉक्टर शामिल थे। समिति की रिपोर्ट यह थी कि रोगी ब्रेन डेड नहीं है। उन्हें लगा कि अरुणा के मामले में इच्छा-मृत्यु की कोई ज़रूरत नहीं है। इसके अलावा, केईएम अस्पताल और बॉम्बे नगर निगम के कर्मचारियों ने इस मामले में अरुणा के लिए इच्छा-मृत्यु का विरोध करते हुए एक याचिका दायर की। अदालत ने अरुणा शानबाग के लिए इच्छा-मृत्यु की याचिका को ख़ारिज कर दिया लेकिन देश में निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु को वैध करार दिया।

''जस्टिस मार्कंडेय काटजू और जस्टिस ज्ञान सुधा मिश्रा की बेंच ने 2011 में अरुणा शानबाग केस की सुनवाई करते हुए निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु की अनुमति दी थी। इस निर्णय ने ठीक न होने की हालत में पहुँच चुके मरीजों एवं उनके परिवार वालों को राहत देते हुए विशेष परिस्थितियों में इच्छा-मृत्यु की मंजूरी दी।''[11]

इस मामले में न्यायालय ने महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश निर्धारित किए हैं :

1. जीवन रक्षक उपकरण बंद करने का निर्णय माता-पिता या पति या पत्नी या अन्य करीबी रिश्तेदारों द्वारा या उनमें से किसी की अनुपस्थिति में किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा भी लिया जा सकता है जो रोगी का करीबी मित्र हो। यह निर्णय मरीज़ का इलाज करने वाले डॉक्टर भी ले सकते हैं हालाँकि यह निर्णय रोगी के हित में लिया जाना चाहिए।
2. भले ही जीवन रक्षक उपकरण हटाने का निर्णय निकट संबंधियों या डॉक्टरों या निकटतम मित्र द्वारा लिया जाए, इस तरह के निर्णय के लिए संबंधित उच्च न्यायालय से अनुमोदन की आवश्यकता होगी जैसाकि **एरेडेल मामले** में निर्धारित किया गया है।
3. ऐसे किसी आवेदन के भरे जाने पर, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को तुरंत कम-से-कम दो न्यायाधीशों की एक खंडपीठ का गठन करना चाहिए जो अनुमोदन प्रदान करने या न करने का निर्णय करे। खंडपीठ द्वारा तीन प्रतिष्ठित चिकित्सकों की एक समिति नामित की जाएगी जो रोगी की स्थिति के संबंध में एक रिपोर्ट देगी। फ़ैसला सुनाने से पहले करीबी रिश्तेदारों और राज्य को रिपोर्ट के संबंध में नोटिस दिया जाना चाहिए। हाईकोर्ट पक्षों को सुनने के बाद फ़ैसला सुना सकता है।

न्यायालय ने इच्छा-मृत्यु के दायरे को ख़ारिज कर दिया, लेकिन विशेष परिस्थितियों में निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु को वैध करार दिया।

"**अरुणा शानबाग वाला मामला** भारत का पहला मामला है जिसमें विस्तार से इच्छा-मृत्यु पर विचार विमर्श किया गया। उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट करते हुए कि निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु अन्य देशों की तरह हमारे देश में अनुज्ञेय है ऐसे मरणांततः रोगी के मामले में अपनाए जाने वाले सुरक्षोपायों और मार्गदर्शक सिद्धांतों को अधिकथित करने का कार्य आरंभ किया जो अप्रतिरोध्य मूर्छा और विकृतचित जैसे शारीरिक या मानसिक दशा के कारण सहमति देने की स्थिति में नहीं है।"[12]

मार्च, 2018 में एक बड़े फ़ैसले (**कॉमन कॉज (ए रजिस्टर्ड सोसाइटी) बनाम यूनियन ऑफ इंडिया रिट याचिका (सिविल) संख्या, 2005 का 215**) में उच्चतम न्यायालय ने देश भर में निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु की अनुमति देते हुए गरिमा के साथ मरने के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया। यह निर्णय ग़ैर-लाभकारी संगठन 'कॉमन कॉज' द्वारा दायर 2005 की जनहित याचिका (पीआईएल) में दिया गया। एनजीओ ने अदालत से 'इच्छा-मृत्यु' को मान्यता देने की माँग की थी और यह तर्क दिया कि जब एक चिकित्सा विशेषज्ञ कहता है कि लाइलाज बीमारी से ग्रस्त रोगी रोग के ऐसे चरण पर पहुँच गया है जहाँ वो ठीक नहीं हो सकता है, तो उसे इच्छा-मृत्यु का अधिकार दिया जाना चाहिए, ताकि वह अपने शेष जीवन में कष्टदायी दर्द से बच सके।

इस ऐतिहासिक मामले में पीठ ने 11 अक्टूबर, 2017 वाले अपने फ़ैसले में कोई बदलाव न करने का निर्णय लिया। पीठ के अनुसार, शांति से मरने के अधिकार को भारतीय संविधान

के अनुच्छेद 21 के तहत जीने के अधिकार से अलग नहीं किया जा सकता है। उक्त मामले में मरणासन्न व्यक्ति द्वारा इच्छा-मृत्यु के लिए लिखी गई वसीयत (लिविंग विल) को मान्यता देने की भी माँग की गई थी ('लिविंग विल' एक लिखित दस्तावेज़ होता है जिसमें कोई मरीज़ पहले से इच्छा जाहिर करता है कि मरणासन्न स्थिति में पहुँचने या रजामंदी नहीं दे पाने की स्थिति में पहुँचने पर उसे किस तरह का इलाज दिया जाए)। इस मामले में पाँच न्यायाधीशों ने चार अलग-अलग राय रखी, लेकिन सभी ने एकमत होकर लिविंग विल पर सहमति जताई। यह निर्णय लिया गया कि विशेष परिस्थितियों के तहत इच्छा-मृत्यु की माँग करने वाले लोगों को लिखित रूप में लिविंग विल देनी होगी।

क्या है लिविंग विल?

इच्छा-मृत्यु के लिए लिखी गई वसीयत (लिविंग विल) एक ऐसा लिखित दस्तावेज़ है जिसमें कोई मरीज़ पहले से यह निर्देश देता है कि मरणासन्न स्थिति में पहुँचने या रजामंदी नहीं दे पाने की स्थिति में होने पर उसे किस तरह का इलाज दिया जाए, जबकि इच्छा-मृत्यु (पैसिव यूथेनेशिया) वह स्थिति है जब किसी मरणासन्न व्यक्ति की मृत्यु सन्निकट देखते हुए उसे इलाज देना बंद कर दिया जाता है।

लिविंग विल के माध्यम से ही कोई व्यक्ति यह बता सकता है कि जब उसके ठीक होने की उम्मीद न हो तो उसे जबरन लाइफ सपोर्ट सिस्टम पर रखना उचित है या नहीं?

कोमा में पहुँच चुका मरीज़ स्वयं इस स्थिति में नहीं होता कि वह अपनी इच्छा व्यक्त कर सके। इसलिए उसे पहले ही यह लिखने का अधिकार होना चाहिए कि जब उसके ठीक होने की उम्मीद खत्म हो जाए तो उसके शरीर को यातना न दी जाए। इस संबंध में एक उपाय यह हो सकता है कि डॉक्टरों की एक टीम द्वारा संबंधित व्यक्ति के स्वास्थ्य की भली-भाँति जाँच की जाए, लेकिन क़ानूनी प्रावधानों के अभाव में ऐसा नहीं हो पाता।

लिविंग विल और इच्छा-मृत्यु के इस नए अधिकार का दुरुपयोग रोकने के लिए उच्चतम न्यायालय ने कुछ दिशा निर्देश दिए :

1. असाध्य बीमारी से ग्रस्त मरीजों के मामले में मरीज़ के नजदीकी मित्र और संबंधी इस संबंध में अग्रिम निर्देश दे सकते हैं और लिविंग विल का निष्पादन कर सकते हैं।
2. ऐसे लोगों को इच्छा-मृत्यु की वसीयत करने की भी अनुमति दी गई है जो मेडिकल कोमा में रहने या लाइलाज बीमारी से ग्रसित होने की वजह से इच्छा-मृत्यु चाहते हैं।
3. लिविंग विल को लेकर ऐसे व्यक्ति की पूरी छानबीन होगी, जिसे संपत्ति या विरासत में लाभ होने वाला हो।
4. इच्छा-मृत्यु पर आखिरी फ़ैसला मेडिकल बोर्ड तय करेगा कि इलाज संभव है या नहीं और यह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होगा कि मरीज़ से लाइफ सपोर्ट सिस्टम हटाया जाना चाहिए या नहिं।

5. मेडिकल बोर्ड के कहने पर कि इलाज संभव नहीं है तो लाइफ सपोर्ट सिस्टम हटा सकते हैं।

उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 2018 के अपने दिशा-निर्देशों पर संशोधन किए जाने की माँग पर सहमति जताई है। अदालत ने कहा कि यह विधायिका पर है कि वह उपचार बंद करने का निर्णय लेने वाले मरणासन्न रोगियों के लिए क़ानून बनाए। इंडियन काउंसिल फॉर क्रिटिकल केयर मेडिसिन द्वारा दायर किए गए विविध आवेदनों पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने यह सहमति जताई। पीठ ने कहा कि ''कोर्ट के आदेश के बावजूद लिविंग विल दर्ज कराने के ईच्छुक लोगों को जटिल दिशानिर्देशों के कारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।''[13] साथ ही अदालत ने यह भी कहा कि वह इन दिशानिर्देशों में मामूली फेरबदल ही कर सकती है। अदालत ने कहा है कि वह लिविंग विल पर ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट की मंजूरी जैसी अनिवार्यता को समाप्त करेगा। मेडिकल बोर्ड की समय सीमा भी तय की जाएगी।[14]

संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन का अधिकार देता है, लेकिन इसकी व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जीवन के अधिकार में गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है। यदि कोई अशक्त और असहाय व्यक्ति जिसके जीवन में पीड़ा के अलावा और कुछ न हो और वह अपने प्रत्येक कार्य के लिए दूसरों पर निर्भर रहता हो तो ऐसी स्थिति में उसके गरिमा के साथ जीने के अधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन होता है। इच्छा-मृत्यु के पक्ष में खड़े लोगों का तर्क है कि व्यक्ति के शरीर पर केवल उसका अधिकार है। यदि बीमारी के कारण व्यक्ति का दर्द सहनशक्ति की सीमा से ऊपर जा चुका है, तो उस व्यक्ति को इच्छा-मृत्यु के जरिये दर्द से मुक्ति पाने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

इस बात की कोई गारंटी नहीं दी जा सकती है कि इस प्रकार के क़ानून का दुरुपयोग नहीं होगा। इच्छा-मृत्यु के विपक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इसकी अनुमति देने या इसे वैध बनाने से इसके दुरुपयोग की संभावनाओं को बल मिलेगा। धन-संपत्ति या पारिवारिक दुश्मनी के कारण इच्छा-मृत्यु का दुरुपयोग टालना असंभव-सा कार्य होगा और इसे मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के जीवन को समाप्त करने के एक तरीके के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। भारत में जिस तरह मध्य वर्ग में बुजुर्गों को बोझ मानने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, वैसे में इसके दुरुपयोग होने की प्रबल संभावना है। उच्चतम न्यायालय ने खुद आशंका जाहिर की थी कि आजकल मध्यम वर्ग में वृद्धों को बोझ समझा जाता है।

इसका सबसे ख़तरनाक पहलू यह है कि इस तरह के दुरुपयोग का आसानी से पता भी नहीं लगाया जा सकता है। इस प्रकार यद्यपि इच्छा-मृत्यु नैतिक रूप से न्यायोचित प्रतीत होती है लेकिन इसका त्रुटिहीन कार्यान्वयन लगभग असंभव-सा लगता है।

लिहाजा इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए पूर्ण सावधानी की आवश्यकता है। इस चुनौती

का पूरी तरह से समाधान करने के लिए निरंतर और ठोस प्रयासों की आवश्यकता होगी। आत्महत्या की बढ़ती समस्या और कतिपय मामलों में यूथनेशिया की आवश्यकता के आलोक में, सरकार की तीनों शाखाओं यथा न्यायपालिका, विधायिका और कार्यकारी के साथ-साथ नागरिकों को भी मिलकर काम करना होगा।

❑

संदर्भ

1-3. भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या 241, निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु -- पुनर्विचार, पृ. संख्या 7

4-6. भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या 241, निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु -- पुनर्विचार, पृ. संख्या 8

7. भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या 241, निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु -- पुनर्विचार, पृ. संख्या 9

8. www.amarujala.com, दिनांक 9 मार्च, 2018

9. www.navbharattimes.indiatimes.com, दिनांक 11 दिसंबर, 2014

10. www.outlookhindi.com, दिनांक 9 मार्च, 2018

11. www.outlookhindi.com, दिनांक 9 मार्च, 2018

12. भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या 241, निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु -- पुनर्विचार, पृ. संख्या 19

13. www.hindinews18.com, दिनांक 18 जनवरी, 2023

14. www.abplive.com, दिनांक 24 जनवरी, 2023

डॉ. सुमन शर्मा

स्त्रियों के मानव अधिकार : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

मानव अधिकार वह अधिकार होते हैं जो मानव जीवन के लिए वांछनीय हैं। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान के लिए परमावश्यक हैं। भारत में मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2(घ) में मानव अधिकारों की परिभाषा दी गई है कि ''मानव अधिकार भारत के संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अंतरराष्ट्रीय संविदाओं में सन्निहित व्यक्तियों की प्राण, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकारों से है जो भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है।''

आमतौर पर भारतीय समाज को पुरुष प्रधान समाज कहा जाता है। यहाँ पुरुषों और स्त्रियों के सभी कार्यक्षेत्र एवं अधिकार समयानुसार परिभाषित होते रहे जिसके कारण भारतीय महिलाओं को आजीवन अनेक निर्योग्यताओं को झेलना पड़ता है। बालविवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, बहुपत्नी विवाह, भ्रूण हत्या, दहेज, घरेलू हिंसा, बलात्कार आदि अनेक समस्याएँ महिलाओं से जुड़ी हैं। किसी भी समाज का सर्वांगीण विकास तभी होता है जब उस समाज में लिंग भेद के आधार पर कोई विषमता न हो। स्वतंत्र भारत के संविधान में हर आधार पर समानता की बात कही गई है किंतु व्यवहार में ऐसा नहीं है। महिलाओं के प्रति मानव अधिकार का उल्लंघन स्वतंत्रता के 67 वर्षों के बाद भी रुकने का नाम नहीं ले रहा है। जरूरत मात्र महिलाओं को उनके मानव अधिकारों के प्रति जागरूक करने की है जिससे वह समाज में और अधिक प्रताड़ित न हो।

पितृसत्तात्मकता ने महिलाओं को अव्यक्त व्यक्तित्व देकर अपनी कृत्रिम गरिमा को बनाए रखने का प्रयास हमेशा किया। पुरुष रचित रीति-रिवाजों में महिला अर्धांगिनी और अनुगामिनी बनकर रह गई। उसका कार्यक्षेत्र परिवार की चारदीवारी तक सीमित रह गया। जहाँ एक ओर उसे पूजनीय, वंदनीय, ममतामयी, प्रेरणादायिनी कहा गया। वहीं दूसरी ओर कुलटा, पतिता, कुलक्षिणी और कुलघातिनी आदि शब्दों से संबोधित किया जाता है।

अनियंत्रित यौन संबंध की स्थिति में मातृसत्तात्मक परिवार प्रणाली का प्रचलन स्वाभाविक था। इस प्रकार की परिवार प्रणाली में महिलाओं की प्रस्थिति श्रेष्ठ रही। इसी दौरान विवाह संस्था को स्वीकृति मिली। तत्पश्चात्, पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली का प्रचलन प्रारंभ हुआ। इसने महिलाओं को पति की दासी और संतान उत्पन्न करने का यंत्र बना दिया। फलतः महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आ गई।

वैदिक युग में महिलाएँ स्वतंत्र थीं। वह पुरुषों के समाज में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकती थी। तब परिवार में पुत्री का जन्म शुभ माना जाता था। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। समाज में उनका आदर और सम्मान होना लगा। एक ओर इस काल में पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक कार्यों एवं सामाजिक समारोहों में भाग लेती थीं। कुछ कुलीन स्त्रियों ने बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रचार किया। मैगस्थनीज के अनुसार, महिलाओं को विधवा विवाह तथा विवाह विच्छेद का अधिकार था। वह पारिवारिक संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करती थीं। वहीं दूसरी ओर मुसलमानों की वासनात्मक मनोवृत्ति के कारण बहुपत्नी प्रथा भी सशक्त हुई।

अंग्रेजी शासनकाल में महिलाओं से जुड़ी समस्याएँ पूर्ववत् बनी रहीं। अंग्रेज़ यह जानते थे कि यदि दूसरे देश पर अधिक दिनों तक शासन करना है तो वहाँ की प्रथा और परंपरा पर कोई विवाद न किया जाए। किंतु समाज सुधार आंदोलनों द्वारा नारी समस्याओं के निराकरण का प्रयास अवश्य किया गया। फलतः राजा राममोहन राय ने सती प्रथा को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। विवेकानंद तथा दयानंद सरस्वती का प्रयास भी स्त्रियों की दशा सुधारने में महत्त्वपूर्ण रहा। ईश्वरचंद विद्यासागर के प्रयास से स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला। महात्मा गांधी महिला को शिथिल एवं अबला कहना पुरुष की विकृत दृष्टि एवं परिसीमितता का परिचायक मानते थे। वह नारी में पुरुष से अधिक नैतिक शक्ति मानते थे; जो सभी शक्तियों से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। गांधी बाल विवाह, दहेज प्रथा एवं सती प्रथा के विरोधी होकर विधवा पुनर्निवाह के पक्षधर थे।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 स्त्री-पुरुष भेद को नकारते हैं। अनुच्छेद 39 के अंतर्गत स्त्री को पुरुष के समान जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने का अधिकार है। अनुच्छेद 39(क) में व्यवस्था है कि समान कार्य के लिए पुरुष और स्त्री को समान वेतन मिले।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसंबर, 1948 को वैश्विक मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की। इस घोषणा-पत्र में सभी मनुष्यों के लिए मानव अधिकार में जीवन का अधिकार, यातना के विरुद्ध अधिकार, दासता के विरुद्ध अधिकार, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार, क़ानून के समक्ष समानता का अधिकार, विचार अंतरात्मा एवं धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, सुझाव रखने का अधिकार, शांतिपूर्ण समूह बनाने का अधिकार, एसोसिएशन बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार, मत देने का अधिकार, लोक सेवा में चुने जाने का अधिकार, किसी भी व्यवसाय को चुनने का अधिकार, उचित कार्य दशा का अधिकार, श्रमिक संघ बनाने का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, उचित जीवन जीने का अधिकार, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने के अधिकार दिए गए हैं।

भारतीय समाज में स्त्री ज्ञान, वैभव और शक्ति का स्रोत मानी जाती है। तब भी भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा हेय है और उन्हें अनेक संरक्षणों की आवश्यकता पड़ती है। नारी ने जिस कोख़ से संपूर्ण सृष्टि का सृजन किया, उसी कोख़ को बलात्कार, यौन उत्पीड़न और वेश्यावृत्ति का कुप्रभाव झेलना पड़ता है। नारी विभिन्न परिस्थितियों में पुरुष को ममता, स्नेह, समर्पण और वात्सल्य का सुख देती है किंतु उसे उसी पुरुष से अपमानित होना पड़ता है। भारतीय समाज

में नारी एक जीवित विसंगति, विडंबना और व्यथा है जिसकी दशा में सुधार के प्रयास अभी भी वास्ताविक अर्थों में नहीं हो पाए हैं। स्त्रियों के मानव अधिकारों का हनन बालिका भ्रूण हत्या से आरंभ होता है जिसका नींव हम स्वयं रखते हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति का बाहुल्य इसके लिए उत्तरदायी है। वर्तमान में संचार माध्यम और मुख्य रूप से चलचित्र और टेलीविज़न महिलाओं की छवि विकृत कर रहे हैं। इनमें प्रत्येक प्रचार की वस्तु पर अकारण स्त्री का चित्र जोड़ दिया जाता है। पश्चिमीकरण से प्रभावित भारतीय महिलाएँ अपने शरीर का नग्न प्रदर्शन करना आधुनिकता की पहचान मान बैठी हैं। इसी कारण इन्हें अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है।

महिलाओं के मानव अधिकारों से वंचित होने का मुख्य कारण विधानों का अप्रभावी होना, विधानों की जानकारी न होना, जागरूकता का अभाव आदि है। सशक्त जनमत ही महिलाओं को मानव अधिकार हनन से छुटकारा दिला सकता है। अतः जनमत जागृत अभियान चलाना चाहिए।

मानव अधिकार हनन रोकने के लिए आवश्यक है कि भारत में महिलाओं से संबंधित प्रभावी विधानों का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन किया जाए। महिला संगठनों का प्रभावशील होना और सशक्त जनमत का निर्माण करके हम इन अधिकारों के हनन को रोक सकते हैं जिसमें ग़ैर-सरकारी संगठन बड़ी भूमिका निर्वाह कर सकते हैं। ग़ैर-सरकारी संगठनों के अप्रभावकारी होने का प्रमुख कारण उनकी कमजोर वित्तीय स्थिति है। इसी स्थिति के कारण वह अपराधी तथा सफ़ेदपोश, नौकरशाह, बड़े व्यापारी घराने के बिगड़े और जन्मजात विचलनकारी व्यक्तियों को सख्त दंड नहीं दिला सकते क्योंकि ऐसे लोगों को सुधारने के लिए अधिक धन, बल की जरुरत होती है। सामान्य तौर पर महिलाएँ ही महिलाओं का अपमान करतीं है। इसके पीछे उनकी कुंठित सोच और किंचित संस्कार होते हैं जिन्हें विज्ञान मनोवैज्ञानिक कारण कहता है।

मानव अधिकार हनन के सामाजिक कारणों में ग़रीबी, पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली, परंपरिक प्रथाएँ और दहेज है। मानव अधिकार हनन रोकने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रभावकारी हो सकते हैं --

- महिलाओं को उनके साथ होने वाले अपराधों के प्रति जागरूक किया जाए। जब महिलाएँ स्वयं अपने हितों के प्रति जागरूक होंगी, तभी उन्हें आपराधिक घटनाओं से मुक्ति मिल सकेगी।
- घरेलू हिंसा अधिनियम की पूरी जानकारी समाज के लोगों को कराई जाए। इससे घरेलू हिंसा में कमी आएगी। कमज़ोर वर्ग के लोगों में नशा किए पुरुष स्त्रियों के साथ मारपीट करते हैं। जब उन्हें यह पता होगा कि इन कृत्यों के लिए वैधानिक दंड की व्यवस्था है तो वह दंड से डरेंगे। फलतः पत्नियों के साथ होने वाली हिंसात्मक गतिविधियाँ कम होंगी।
- शैक्षणिक संस्थाओं के पाठ्यक्रम में कहानियों के माध्यम से विद्यार्थियों को महिलाओं के प्रति हो रहे दुराचरण से अवगत कराया जाए। उनमें स्वस्थ मनोवृत्ति को उभारकर परिवारिक घरेलू हिंसा को रोका जा सकता है।

- सरकार लोक अदालतों के माध्यम से परिवार में सौहार्द्र उत्पन्न करने का प्रयास करती है। पारिवारिक विवादों को मिल-जुलकर सुलझाने का प्रयास करती है। इससे न केवल पारिवारिक विघटन रुकता है अपितु सामाजिक विघटन होने से भी बच जाता है।
- हर क्षेत्र में महिला अधिकारी की नियुक्ति यथासंभव हो और उन्हें महिला उत्पीड़न का फैसला करने का भार दिया जाए तो महिला उत्पीड़न संबंधी घटनाओं में कमी आएगी।
- पंचायती राज व्यवस्था में जिस प्रकार महिलाओं के लिए स्थान सुरक्षित है उसी प्रकार विधान सभाओं और संसद में भी होना चाहिए। महिला सशक्तिकरण के लिए यह आवश्यक है। राजनीतिक दल संसद तथा विधानसभा में आरक्षण का विरोध कर रहे हैं। उनके विरुद्ध महिलाओं को आवाज उठानी चाहिए तथा भावी चुनावों में उन्हें वोट नहीं देना चाहिए। यह दुःख का विषय है कि जिस देश में आधी संख्या महिला की है वहाँ 10 प्रतिशत महिलाएँ विधान सभा तथा संसद में नहीं पहुँच पातीं। देश का विधान जहाँ बनता है उस संस्था में प्रचुर मात्र में उनकी भागीदारी स्त्रियों के मानव अधिकारों की रक्षा कर सकेगी।
- राष्ट्रीय महिला आयोग को और अधिक सक्रिय होना होगा। जहाँ भी महिलाओं के साथ अन्याय हो रहा हो, वहाँ तुरन्त महिला आयोग को कार्यवाही करनी चाहिए। उन क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना चाहिए जो दुर्गम स्थानों में हैं।
- पीड़ित महिलाओं के लिए सरकार निःशुल्क क़ानूनी सहायता की व्यवस्था करें ताकि महिला उत्पीड़न से संबंधित जनहित मामलों में त्वरित फैसला होना चाहिए।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रताड़ना की अनेक घटनाओं में जैसे अपहरण, बलात्कार आदि में पुलिस कर्मी वैधानिक कार्यवाही पूरी निष्ठा से नहीं करते। न्यायालयों में अधिक विलंब से फैसला होने के कारण अनेक लोगों को न्याय नहीं मिलता है। न्याय महँगा होता जा रहा है। 5 से 7 वर्ष तक का समय एक 'केस' में लग जाता है फिर भी न्याय नहीं मिलता। यही कारण है कि आम आदमी न्याय प्रक्रिया में उलझने के भय से अपराध के विरुद्ध मुकद्दमा नहीं करता। परिणामतः उसका धन, बल बढ़ जाता है। इस प्रकार वे मानव जाति को मिलने वाले मानव अधिकारों से वंचित रह जाता है।

❑

संदर्भ

1. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993
2. देसाई, नीरा, वीमेन इन मॉर्डन इंडिया, 1969, सोशल वेलफेयर इन इंडिया, एशिया, दिल्ली।
3. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास खंड-2, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।
4. सक्सेना शोभा, महिलाओं के प्रति अत्याचार और संरक्षक क़ानून।
5. सिंह वी.पी., भारत में मानव अधिकार समस्या।

डॉ. आलोक चांटिया

पर्यावरण और मानव अधिकार : एक अवलोकन

मानव अधिकार से कहीं ज्यादा प्राचीन शब्द है पर्यावरण और इसी पर्यावरण के साथ-साथ पृथ्वी पर जीव-जंतुओं की उत्पत्ति भी होती रही है और वह नष्ट भी होते रहे हैं सामान्य तौर पर पर्यावरण का अर्थ है जीव-जंतुओं का वातावरण के साथ संबंध और यही कारण है कि आज इसमें असंतुलन की स्थिति हो जाने के कारण मानव अपनी ही बनाई संस्कृति में इस बात के लिए संवेदनशील होना चाहता है कि वह यह सुनिश्चित कर सके कि पर्यावरण उस मानक स्तर पर बना रहे जिसमें मानव सहित दूसरे जीव-जंतु भी अपने जीवन और अस्तित्व को बनाए रख सकें।

मानव अधिकार की बात दूसरे विश्व युद्ध के बाद की गई और 10 दिसंबर, 1948 को सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा पत्र जारी किया गया उसके अनुच्छेद 1 में यह स्पष्ट लिखा है कि "सभी मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र और समान है...।" आदर्श स्थिति में यह वाक्य इस बात की ओर इंगित करता है कि 1948 के बाद मानव के जीवन में एक आदर्श स्थिति की कल्पना की ही नहीं गई वह दिखाई भी दे रही है लेकिन जिस तरह से वर्तमान में संपूर्ण विश्व के न जाने कितने देश अपने शक्ति प्रदर्शन में परमाणु युद्ध की तरफ बढ़ रहे हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ के समानांतर नाटो का अस्तित्व हथियारों के बाज़ारीकरण में अपना विस्तार कर रहा है और जिस तरीके से यूक्रेन और रूस के बीच युद्ध चल रहा है जिसमें न जाने कितने सैनिक और नागरिक मारे जा चुके हैं उससे यही स्पष्ट होता है कि सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा-पत्र सिर्फ एक काग़ज़ के अंदर सिमटा हुआ दस्तावेज़ है इसने मानव समाज पर कोई असर नहीं डाला है और उसी का परिणाम है कि इस तरह के युद्धों से पर्यावरण भी दूषित हुआ है।

रोज चलने वाले युद्ध में उत्सर्जित हो रही कार्बन डाइऑक्साइड ने मानव जीवन को प्रभावित किया है उससे सिर्फ यूक्रेन और रूस ही नहीं विश्व के कई देशों के पर्यावरण में फर्क आ रहा है और भारत भी उससे अछूता नहीं है और इस बात को इस तथ्य से बहुत ही आसानी से समझा जा सकता है कि जिस भारत में मानसून जून में अपने पूरे प्रभाव के साथ आकर पानी बरसाता था उस पानी बरसाने वाले बादलों का कोई अता-पता नहीं है, पृथ्वी का तापमान इतना बढ़ रहा है जिसके कारण मानव जीवन में बाहर निकलना दुश्वार हो गया है। यही नहीं, मानव जीवन को और दूसरे जीव-जंतुओं को संतुलित स्थिति में रखने के लिए पर्यावरण के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग पेड़ों की संख्या में जिस तरीके से गिरावट आती चली जा रही है उसके कारण ना सिर्फ पेड़ों से होने वाले वाष्प उत्सर्जन की में कमी आई है जो बरसात या पानी बरसने को प्रभावित

कर रहा है बल्कि वह ज़मीन की नमी को कम करने में सहायक हो रहा है जिसके कारण धरती सूख रही है और इस सूखती हुई धरती के कारण भूकंप प्रवण क्षेत्र पैदा होते जा रहे हैं जो सिर्फ और सिर्फ पर्यावरण के प्रति हमारी अनदेखी के कारण उत्पन्न होने वाली स्थिति है।

भारतीय परंपरा में मानव अधिकार शब्द को संस्कृति बनने के समानांतर ही अनुभव किया गया था यह सत्य है कि मानव अधिकार शब्द के रूप में कोई शब्द की रचना तब नहीं की गई थी लेकिन जिस तरह से मानव ने अपने जीवन में उन सारे पेड़ों को महत्त्वपूर्ण माना था और उन्हें धार्मिक क्रियाओं से जोड़कर उन्हें भगवान का दर्जा दिया था वह सारे पेड़ सिर्फ और सिर्फ वातावरण में महत्तम ऑक्सीजन देने और गहराई तक जाकर मिट्टी को अपनी जड़ों से बाँधकर ज़मीन के अंदर जल को सुनिश्चित करने और भूकंप प्रवण क्षेत्रों को कम करने की ही एक क्रिया थी इन पेड़ों में बरगद, पीपल, अशोक, नीम और तुलसी का नाम प्रमुख है। यह भी एक बहुत ही वैज्ञानिक तथ्य है कि तुलसी की जड़ों में यह खासियत होती है कि वहाँ मिट्टी के अंदर मरकरी कैडमियम जैसे जहरीले पदार्थों को सोख लेती हैं जिससे पानी स्वच्छ हो जाता है लेकिन इन सब के विपरीत वर्तमान में पर्यावरण और मानव अधिकार को लेकर एक बहुत ही तनावपूर्ण स्थिति जन्म ले रही है जिसमें मानव अपने जीवन को महत्त्व देता हुआ पारिस्थितिकी के दर्शन से दूर है विश्व में वह पूर्व में सिर्फ अपनी जीवन के लिए नहीं अपने चारों तरफ के वातावरण जीव-जंतु पौधों के साथ अपने संबंधों और उसके प्रति अपनी उत्तरजीविता को समझते हुए संतुलन की स्थिति बनाए रखता था।

वर्तमान में यह संतुलन असंतुलन की ओर बढ़ रहा है क्योंकि जिस तरह से मनुष्य हर दिन यह चाहता है कि वह नए-नए परिधान पहने इसके कारण वस्त्र उद्योग में कपड़ों के लिए प्रयोग की जाने वाली अनगिनत रंगों की डाई पानी को प्रदूषित कर रही हैं। पानी के पीएच मान (पानी की पी.एच. वैल्यू जीरो होती है इसी लिए पानी उदासीन होता है) को प्रभावित कर रही हैं जिसके कारण ऐसे बहुत से बैक्टीरिया हैं जो मानव के लिए लाभकारी हैं लेकिन समाप्त हो रहे हैं, पानी के अंदर रहने वाली मछलियाँ मर रही है और पानी में ऑक्सीजन की मात्रा भी कम होती चली जा रही है। इसी तरह वैज्ञानिक परीक्षणों से यह भी स्थापित हो चुका है कि हम खेतों में जिस तरीके से ज्यादा उत्पादन करने के लिए उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं वह उर्वरक भी पर्यावरण असंतुलन को बढ़ा रही हैं। खेतों की जमीनों के अंदर के बहुत से कीड़े मकोड़े केंचुए समाप्त होते जा रहे हैं जो पारिस्थितिकी संतुलन और ज़मीन की उर्वरता के लिए आवश्यक है, यही नहीं यह उर्वरक पानी के माध्यम से समुद्र में पहुँच कर वहाँ की पारिस्थितिकी को बिल्कुल नष्ट किए दे रहे हैं समुद्र में पाई जाने वाली करीब 10000 मछलियों की प्रजातियाँ समाप्त हो चुकी हैं।

मानव अधिकार के संदर्भ में पर्यावरण का संतुलन एक महत्त्वपूर्ण विषय है क्योंकि गरिमा पूर्ण जीवन की बात संवैधानिक स्तर पर तो की गई है लेकिन गरिमा पूर्ण जीवन में स्वास्थ्य भी एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है लेकिन पर्यावरण असंतुलन के कारण मानव द्वारा जिस तरह से अपने शरीर को शीतल करने के लिए वातानुकूलित वातावरण में रहने के लिए कृत्रिम मशीनीकरण की दुनिया में प्रवेश किया जा रहा है उसके कारण प्रयोग किए जाने वाले वातानुकूलित यंत्र शरीर

में कैंसर पैदा कर रहे हैं क्योंकि हवा को ठंडा करने के लिए रेडान गैस जो एक रेडियोधर्मी पदार्थ है वह कमरों में उपस्थित वार्निश और पेंट को धीरे-धीरे क्षरण करके मानव शरीर में पहुँचा देती है जिसके कारण कैंसर की कई स्थितियां पैदा हो जाती हैं।

बढ़ते शहरीकरण के कारण घरों से निकलने वाले दूषित पानी नदियों और समुद्रों की पारिस्थितिकी को पूरी तरह नष्ट कर रहे हैं। यह सच है कि सीवेज प्लांट इस पानी को शुद्ध करके हमारे घर में भेजते हैं लेकिन इससे इनकी पी.एच. वैल्यू जो जीरो होनी चाहिए वह बुरी तरह प्रभावित हो रही है। पानी की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है जिसके कारण वे मानव शरीर में पहुँचकर कई तरह की बीमारी, डायरिया, कैंसर पैदा कर रहे हैं यही कारण है कि हमें पर्यावरण के संतुलन के लिए पानी की शुद्धता पर भी बहुत ध्यान देना होगा।

विश्व में भौतिक संस्कृति और व्यक्तिगत सुख की लालसा में दौड़ने वाले व्यक्ति ने प्रत्येक 3 सेकंड में एक फुटबॉल पिच के बराबर विश्व में जंगल का सर्वनाश किया है और कर रहा है। करीब एक शताब्दी में 50 प्रतिशत कोरल रीफ (प्रवाल भित्ति को प्रवाल शैल-श्रेणियाँ भी कहते हैं जो समुद्र के भीतर स्थित चट्टान हैं जो प्रवालों द्वारा छोड़े गए कैल्सियम कार्बोनेट (CaCo3) से निर्मित होती हैं। वस्तुतः ये इन छोटे जीवों की बस्तियाँ होती हैं। ...इनकी ऊपरी सतह पर प्रवाल निवास पलते और बढ़ते रहते हैं।) नष्ट हो चुका है और जो 50 प्रतिशत प्रवाल भित्ति बचाए है उसके बारे में यदि हम सचेत नहीं हुए तो 2050 तक करीब 90 प्रतिशत का क्षरण हो जाएगा और यह भी तब होगा जब पृथ्वी के बढ़ते तापमान को 1.5 डिग्री सेंटीग्रेड तक ही नियंत्रित किया जाएगा। यही कारण है कि विश्व पर्यावरण दिवस पर प्रत्येक व्यक्ति को सिर्फ सुबह से शाम तक अपनी रोटी के जुगाड़ के साथ साथ यह भी जानना चाहिए कि पूरे विश्व में पृथ्वी पर ऐसी कौन-सी घटनाएँ हो रही है जो आने वाले समय में जीवन शब्द को ही गायब कर देंगी।

प्रत्येक वर्ष करीब 4.7 लाख हैक्टेयर जंगल को विश्व में नष्ट किया जा रहा है जो डेनमार्क के क्षेत्रफल से भी ज्यादा है। इसके अतिरिक्त 80 प्रतिशत पानी को बिना रिसाइकिल किए हुए नदी और समुद्र में जाने दिया जा रहा है। दलदली भूमि का एक अपना महत्त्व है जो पिछले 300 साल में करीब 87 प्रतिशत तक खत्म हो चुकी है यह कार्बन को सूखने का एक उत्तम कारक है। इसी दलदली क्षेत्रों के किनारे पर पीटलैंड के बीच क्षेत्र पाए जाते हैं पूरे विश्व की ज़मीन का 3 प्रतिशत हिस्सा है और यह जमीनी कार्बन का करीब 30 प्रतिशत अपने अंदर समाहित करता है जो पारिस्थितिकी तंत्र के लिए आवश्यक है।

आज सबसे बड़ी विडंबना यह है कि विश्व पर्यावरण दिवस को मनाने का मतलब ज्यादातर लोगों ने वृक्षारोपण लगा लिया है जबकि उन्हें सबसे पहले इस बात को आत्मसात करना होगा कि पर्यावरण का मतलब है कि व्यक्ति जिस वातावरण में रह रहा है उसके साथ संबंध और यहाँ पर वातावरण का तात्पर्य वह वायुमंडल है जिसमें व्यक्ति रह रहा है लेकिन जब पारिस्थितिकी तंत्र की बात होती है तो इस बात को प्रत्येक व्यक्ति को समझना होगा कि उसके अंतर्गत जानवर भी आते हैं, पौधे भी आते हैं और मनुष्य भी आता है और इन सभी के संबंधों के समुच्चय का

नाम पारिस्थितिकी तंत्र है लेकिन जिस तरह से मनुष्य ने पेड़ पौधों का दोहन कर के जंगलों को समाप्त किया है, न जाने कितनी जानवरों की, जंतुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हुई हैं। उनका आँकड़ा ही स्पष्ट करता है कि वर्तमान में पारिस्थितिकी तंत्र बहुत ही बुरी तरह से प्रभावित हो चुका है और मानव ना चाहते हुए उस दलदल में स्वयं खड़ा हो गया है जहाँ एक समय बाद वह स्वयं अपने जीवन को नहीं समझ पाएगा। वह अपने जीवन को इस पृथ्वी पर कैसे बनाए रखें इसके लिए विवश होगा और उसकी इस व्यवस्था को कटते हुए जंगलों के कारण जानवरों का शहरों की तरफ पलायन और शहरों में मानव द्वारा उन जानवरों को अपने भोजन में शामिल कर लिए जाने का सबसे बड़ा उदाहरण वर्तमान में वैश्विक स्तर पर कोरोना जैसे विषाणु से फैली महामारी में अनुभव किया जा सकता है।

कुछ दिन पूर्व ही चीन ने इस बात की भी पुष्टि की है कि बर्ड फ्लू जैसी बीमारी भी मनुष्य में पाई जाने लगी है और इसीलिए भारत जैसे देश के 'दर्शन संतोषम परम सुखम' या 'जियो और जीने दो' के सिद्धांतों को फिर से अपनाए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि जब पेड़ पौधों के अस्तित्व को हम नहीं समझेंगे, जानवरों को जीने का अवसर नहीं देंगे तो उन के माध्यम से हम मनुष्यों के अस्तित्व पर भी एक प्रभाव पड़ेगा।

कोरोना काल में ऑक्सीजन की समस्या और लोगों द्वारा ऑक्सीजन लेने में परेशानी का अनुभव यह बताता है कि वातावरण में हमने स्वयं पेड़ पौधों का दोहन करके ऑक्सीजन के संतुलन को भी बिगाड़ा है। इसलिए पेड़ पौधे लगाना पर्यावरण की संपूर्णता में सिर्फ 33 प्रतिशत भाग है। शेष 33 प्रतिशत में जल की शुद्धता है और 33 प्रतिशत पृथ्वी या ज़मीन की उर्वरता और उसके पोषक तत्त्वों के निर्माण को बनाए रखने का प्रयास है जो हम समझ नहीं पा रहे हैं या जनसंख्या के विकराल स्वरूप के आगे हमारे सामने सिर्फ यही विकल्प शेष रह गया है कि हम जमीनों को उर्वरकों के माध्यम से नष्ट कर डालें! रहने के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जंगल काट डाले!

मानव ने जिस संस्कृति को बनाकर पृथ्वी पर अपने जीवन को सुरक्षित संरक्षित किया था वही संस्कृति अब उसके लिए भस्मासुर बन गई है क्योंकि मानव के द्वारा भौतिक संस्कृति के विकास में इतना बड़ा दायरा फैला दिया है कि हर मानव अब अपने जीवन को प्रकृति के सापेक्ष नहीं अपने पास धन और क्रय शक्ति के सापेक्ष देखने लगा है और उसकी इसी उपेक्षा के कारण आकाश में उड़ने वाले हवाई जहाज से भी पर्यावरण प्रदूषित लगातार हो रहा है, उसके द्वारा फैशन के नाम पर हर दिन वस्त्रों के बदलने के स्थिति में बाज़ारीकरण में वस्त्र उद्योग में लगी कंपनियाँ तरह-तरह के प्रयोग को कर करके पानी को डाई के द्वारा प्रदूषित कर रहे हैं और उसी के चलते मानव जीवन में सुख की अधिकतम प्राप्ति के लिए वातानुकूलित कार, घर, काम करने के स्थान सभी जगह वातानुकूलित यंत्र हवाओं में रेडान गैस के माध्यम से पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं और यह सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों को नहीं प्रदूषित कर रहे हैं जो इसका प्रयोग कर रहे हैं बल्कि इनके द्वारा निकलने वाली गंभीर गर्म हवाएँ उन लोगों के जीवन को भी प्रभावित कर रही हैं जिनके पास वातानुकूलित यंत्र रखने की क्षमता नहीं है और जिसके कारण बाहर का वातावरण तापमान

इतना ज्यादा हो जाता है कि एक सामान्य और ग़रीब आदमी ना तो उस गर्म हवा के साथ चल पाता है ना रह पाता है जो एक गंभीर मानव अधिकार उल्लंघन है जिसमें एक व्यक्ति को तो सुख मिलता है और दूसरे व्यक्ति के जीवन में गंभीर समस्याएँ पैदा हो रही है क्योंकि उसके पास धन नहीं है।

मानव जनसंख्या के लगातार बढ़ने और उसके बढ़ते हुए दबाव के फलस्वरूप जंगलों को काटने, घर बनाने के लिए ख़रीदी गई ज़मीन के महत्तम प्रयोग करने आदि ने प्रकृति के जो महत्त्वपूर्ण अवयव थे उनको नष्ट कर दिया है। पेड़-पौधे धीरे-धीरे मानव संख्या के सापेक्ष कम होते जा रहे हैं जिसके लिए मानव सतत विकास या सस्टेनेबल डेवलपमेंट की बात तो कर रहा है लेकिन वह उतने पेड़ लगाकर पृथ्वी को उसी रूप में नहीं रख पा रहा है जिससे आने वाली पीढ़ी भी आने वाले समय में पर्यावरण के साथ एक संतुलन की स्थिति में मानव जीवन गरिमापूर्ण जीवन की तरह जी सकें। आज मानव बाज़ारीकरण, पैसा और ज्यादा से ज्यादा काम करके सुख बटोरने में यह जान ही नहीं पा रहा है।

शीतल पेय के नाम पर कोल्ड ड्रिंक के नाम पर जिन बड़े-बड़े संयंत्रों को लगाकर वह शीतल पेय पदार्थ खरीद रहा है शीतल पेय पदार्थों को बनाने के लिए 1 लीटर कोल्ड ड्रिंक के लिए 10 लीटर पानी बर्बाद होता है। इसके अतिरिक्त, कोल्ड ड्रिंक बनाने वाले संयंत्र जहाँ लगाए जाते हैं उनके कारण आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों के खेत बंजर हो जाते हैं। इनके द्वारा निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों में कैडमियम, लेड जैसे ख़तरनाक जहरीले पदार्थ होते हैं जिससे जानवरों और मनुष्यों को तरह तरह के कैंसर होते हैं जिसमें स्किन कैंसर प्रमुख है और उसका परिणाम यह होता है कि मानव को तत्कालिक क्षणिक सुख तो मिल जाता है लेकिन उसके गंभीर दूरगामी परिणाम पर्यावरण पर पड़ते हैं और आने वाले मानव सहित अन्य जीव-जंतुओं प्रकृति पर पड़ते हैं।

ऐसा नहीं है कि सरकार और मनुष्य इस पर सोच नहीं रहे हैं भारत जैसे देश में जहाँ भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्व में पर्यावरण के प्रति लोगों को उनके कर्त्तव्य बताए गए हैं वहीं पर भारत में कई क़ानून भी बनाए गए हैं

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के साथ पर्यावरण संरक्षण नियम 1986 में 1999 में संशोधन किया गया। यह भारत में लागू होने वाला पहला प्रमुख अधिनियम था। कुख्यात भोपाल गैस त्रासदी के बाद अधिनियम पारित किया गया था। 1986 का पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (ईपीए) व्यापक विधायी कवरेज के साथ छाता क़ानून है। EPA को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 253 के तहत अधिनियमित किया गया था, जो अंतरराष्ट्रीय समझौतों को प्रभावी करने के लिए क़ानून बनाने का प्रावधान करता है। राज्य पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने तथा देश के वनों एवं वन्यजीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा। भारतीय न्यायपालिका ने संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए जीवन के अधिकार में परंपरा, संस्कृति और विरासत, शिक्षा के अधिकार, आजीविका के अधिकार, प्रदूषण रहित जल एवं वायु के अधिकार तथा संतुलित पर्यावरण के अधिकार को भी सम्मिलित माना है।

1969 का राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अधिनियम : राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अधिनियम पहले लिखे गए क़ानूनों में से एक था जो हमारे पर्यावरण की सुरक्षा के लिए व्यापक राष्ट्रीय ढांचा स्थापित करता है। यह पर्यावरण गुणवत्ता पर राष्ट्रपति परिषद (सीईक्यू) की स्थापना को बढ़ावा देता है। यह क़ानून 1 जनवरी, 1970 को अधिनियमित किया गया था। पर्यावरण नीति के कुछ उदाहरण इस तरह से हैं

भारत जैसे देश में पर्यावरण नीति मुख्यता 6 बिंदुओं पर कार्य करती हैसंघीय और राज्य पर्यावरण नियमों में वायु गुणवत्ता, जल गुणवत्ता, अपशिष्ट प्रबंधन, भूमि संरक्षण, रसायन और तेल रिसाव, पीने के पानी की गुणवत्ता शामिल हैं। कुछ पर्यावरण नीतियाँ निजी व्यक्तियों, संगठनों या व्यवसायों के कार्यों को नियंत्रित करती हैं।

वैसे तो भारत जैसे देश में पर्यावरण और मानव अधिकार के संदर्भ में कई क़ानून बनाए गए हैं लेकिन यदि पर्यावरण पर ही केंद्रित करते हुए देखा जाए तो मुख्य रूप से 3 क़ानूनों की चर्चा की जा सकती है तीन महत्त्वपूर्ण पर्यावरण क़ानून वन संरक्षण अधिनियम, 1980, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 हैं।

इन क़ानूनों के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह से पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए प्रकृति के सभी तत्त्वों को महत्त्व दिया गया और उन्हें संरक्षण प्रदान किया गया है लेकिन भारतीय संविधान के अंतर्गत पर्यावरण अधिकार को भी स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।

स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार : भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48 (ए) पर्यावरण की सुरक्षा एवं संवर्धन तथा वनों एवं वन्य जीवों की सुरक्षा का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 51ए नागरिकों से वनों, झीलों, नदियों एवं वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा एवं संवर्धन करने तथा जीवित प्राणियों के लिए करुणा रखने की अपेक्षा करता है।

जहाँ पूरे विश्व में 1972 से पर्यावरण पर संवेदनशीलता और जागरूकता के कारण विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाने लगा। वहीं पर भारत जैसे देश में भोपाल गैस त्रासदी के बाद 1986 के बाद से पर्यावरण को लेकर बहुत ज्यादा संवेदनशीलता बड़ी और उसके बाद भारत जैसे देश में हर दिन पर्यावरण पर कार्य होने लगा है लेकिन मानव को इस बात को समझना होगा कि मानव अधिकार की बात करते हुए उसे इस बात को याद रखना चाहिए कि मानव शरीर भी वैज्ञानिक रूप से और सांस्कृतिक रूप से जिन तत्त्वों से मिलकर बना है वह पांचों तत्व अग्नि वायु पानी मिट्टी और आकाश को बिना मानक स्तर पर बनाए रखते हुए मानव के स्वयं का शरीर कभी भी मानक स्तर पर नहीं रह पाएगा और उसके स्वयं के कर्त्तव्य इन पांच तत्त्वों के प्रति उसके मानव अधिकार को सुनिश्चित करेंगे यही पर्यावरण और मानव अधिकार का निचोड़ समझा जा सकता है।

❑

मीनाक्षी जोशी

साहित्य, समाज और मानव अधिकार : (संदर्भ : महिला सशक्तिकरण)

काल का चक्र अनवरत घूमता रहता है। वक्त की बहती धार में बहती रहती हैं हमारी भावनाएँ, विचार, दृष्टिकोण, मान्यताएँ। परिवर्तनों की इन ऊँची-नीची लहरों का, हर मोड़ और दिशा का आईना होता है साहित्य। जीवन के मानदंड जो कल थे वे आज नहीं हैं और जो आज हैं वे कल नहीं रहेंगे। समय की प्रत्यक्ष एवं त्वरित अनुभूतियाँ शब्दों में अभिव्यक्त होती चली जाती है। इस प्रकार कड़ी दर कड़ी जुड़ती जाती है साहित्य और समाज से। इक्कीसवी सदी की दो दशक से भी अधिक समय पार कर आज हम देश की स्वतंत्रता का अमृत काल मना रहें हैं। यह मात्र केलेंडर के पन्ने पलटने की क्रिया नहीं अपितु आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में बहुआयामी अवलोकन करने का समय है। विज्ञान, तंत्रविज्ञान, वैश्वीकरण और बाज़ारीकरण के युग में धर्म, समाज, जीवन-मूल्य, भाषा, साहित्य तथा कला को परखने के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन आएँ हैं, महिलाओं को उसके प्रभाव और परिणाम झेलते हुए न केवल अपने अधिकारों के लिए संघर्ष अपितु अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना आज भी बड़ी चुनौती है। मैथिलीशरण गुप्त जी के शब्दों में कहूँ तो --

“हम क्या थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी
आओ विचार करे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी”

स्वतंत्रता के बाद भारत लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित हुआ। भारतीय संविधान निर्माताओं ने ‘सर्वजन हिताय’ तथा मानवीय मूल्यों की धारणा को आधार बनाकर ही नए संविधान का निर्माण किया था जिसमें देश के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त होगी। राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में मानवीय सुरक्षा संबंधी अधिकारों के अंतर्गत पुरुष और स्त्री सभी को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार स्वीकृत हैं। मौलिक अधिकारों में धर्म, जाति, लिंग के भेदभाव, अस्पृश्यता और बाल श्रम का निषेध आदि को मान्यता दी गई। इतना ही नहीं, राज्य सरकार को महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए समय और स्थिति के अनुसार क़ानून में संशोधन की स्वतंत्रता भी प्रदान की गई जबकि साहित्य भी आरंभ से इन्हीं उद्देश्यों के आधार पर लिखा गया और आज भी लिखा जा रहा है। क्या है साहित्य का लक्ष्य?

सर्वे भवंतु सुखिनः, तमसो मा ज्योतिर्गमय, सत्यमेव जयते, अप्पो दीपः भव, वसुधैव कुटुंबकम्, तथा सबका हित जिसमें निहित है वही साहित्य है।

19वीं शताब्दी के आरंभ में महाराष्ट्र की सावित्री बाई फुले ने स्त्री शिक्षा के लिए क्रांति की, ताराबाई शिंदे ने 'स्त्री-पुरुष तुलना' नामक एक किताब लिख कर उसकी स्वतंत्र इकाई का अहसास दिलाया था। इन्हें विश्व की पहली नारीवादी लेखिका भी माना गया। पंडित रमा बाई और अहिल्या बाई का स्त्री मुक्ति के लिए योगदान आज भी एक मिसाल है। आधुनिक काल में भारतेन्दु जी ने 'बालबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से स्त्री-पुरुष समानता का संदेश दिया था। प्रेमचंद की तो लगभग सभी रचनाएँ समाज में नारी की दशा और अधिकारों की ओर संकेत करती है फिर चाहे वह बाल-विवाह, विधवा विवाह, बेमेल विवाह, दहेज-प्रथा आदि कोई भी हो। चित्रलेखा, मृणाल और सुनीता जैसे नारी पात्रों ने स्त्री-शुचिता की मान्यता को खोखला साबित कर दिया। एक ओर जहाँ भारत सरकार ने 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया वहीं दूसरी ओर उत्तर आधुनिकता ने स्त्री उत्पीड़न के नए रास्ते खोल दिए। कविताओं में पवन करण की कविता 'प्यार में डूबी माँ' पितृसत्तात्मक समाज पर सच्चाई से कलम चलाने का साहस करती है। कविताओं के अतिरिक्त आधुनिक कथा साहित्य में विज्ञान तथा भौतिकता से उपजी अनेक समस्याओं को रचनाकारों ने बख़ूबी चित्रित किया है जो महिला सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक नियमों पर प्रश्न चिन्ह भी लगाती हैं। उदाहरणस्वरूप, समलिंगी संबंधों पर मृदुला गर्ग की 'कठगुलाब', फौज में ह्यूमेन क्लोजिंग के प्रयोग और उसकी अमानवीयता पर केंद्रित नमिता सिंह की कहानी 'मिशन जंगल और गिनी-पिग', नारी जीवन पर बाज़ारवाद के दुष्परिणामों पर नीलाक्षी सिंह की 'प्रतियोगी', भ्रूण हत्या पर मधु कांकरिया की 'पोलिथीन में पृथ्वी', रजनी गुप्त की 'धूप' ग्रामीण स्त्रियाँ आर्थिक मजबूरी के कारण समस्त नैतिकता एवं परंपरा को छोडकर समय के साथ चलने का साहस दिखाती हैं। थर्ड जेंडर की पीड़ा, उनका अस्तित्व, समाज में उनकी स्थिति पर नीरजा माधव, चित्रा मुद्गल ने सशक्त रचनाएँ लिखी है। 2019 में संसद द्वारा सेरोगेसी विधेयक को मंजूरी दे दी गई किन्तु इसके दुष्परिणामों पर भी इन दिनों ख़ूब लिखा जा रहा है। सूची बहुत बड़ी हो सकती है, सबकी चर्चा असंभव है। निसंदेह यह तो प्रमाणित होता है कि साहित्य का आस्थावादी स्वर महिला सशक्तिकरण के पक्ष में क़ानून और विज्ञान की तमाम पेचीदीगियों से टक्कर ले मानवता की जय घोष करता है। साहित्य ने समाज में फैली उन कुरीतियों के विरोध में पूरी ताकत से आवाज़ उठाई है जो नारी के विकास में बाधक हैं। साहित्य ने ही नारी में निजत्व और आत्म-सम्मान की चेतना जागृत की, अधिकारों और न्याय के लिए लड़ना सिखाया, रूढ़िवादी मानसिकता पर प्रहार किया, यौन शोषण के विरुद्ध खड़े होने की ताकत दी, दलितों के जीवन का दर्दनाक पृष्ठ खोला और समय, समाज को पुनर्भाषित करने का साहस किया।

सवाल यह उठता है कि इतने प्रयासों के बाद भी क्या साहित्य और संविधान दोनों ही अपने उद्देश्यों में सफल रहे? हाँ, सशक्तिकरण के नाम पर यदि आँकड़ों में कुछ उपलब्धियाँ

गिनने की बात छोड़ दे तो सच यही है कि समाज में स्त्री की समस्याएँ आज भी खत्म नहीं हुई। इस तथ्य की सच्चाई प्रमाणित करती है प्रतिदिन अख़बारों में प्रकाशित होने वाली कुछ ऐसी ख़बरें-चीखती पुकारती रही नंदा, किसी ने नहीं सुनी उसकी पुकार, योगा केंद्र में देह व्यापार, संभ्रांत परिवारों की लिप्तता, ब्लू फ़िल्म देखकर नाबालिग ने किया दुष्कर्म और हत्या, महिला की हत्या के आरोप में पति और जेठ गिरफ़्तार, दहेज के लिए चाकू से गोदा, प्रताड़ना से तंग आकर महिला ने की आत्महत्या, चार-वर्षीय बेटी के साथ पिता ने किया मुंह काला, मतिमंद विकलांग युवती के साथ सामूहिक दुष्कर्म, जादू टोने के शक में आदिवासी महिला को गाँव में निर्वस्त्र घुमाया, संपत्ति के विवाद में वृदधा की हत्या आदि। घरेलू हिंसा का तो कोई हिसाब ही नहीं और शायद इन अपराधों पर न्याय की समुचित व्यवस्था की कमी भी है। कब बदली हैं स्त्री समाज की स्थिति? हर युग में बदल जाती है उसकी भाषा, दिन बदल जाते हैं, स्थान बदल जाते हैं, तारीख बदल जाती हैं पर नहीं बदलती समस्याएँ। आज उन कारणो पर विचार करने की सख्त ज़रूरत है जो महिला सशक्तिकरण में बाधक है। मुझे लगता है सबसे बड़ी बाधा है भारतीय समाज में स्त्रियों की मानसिकता। राजी सेठ लिखती हैं -- "परिजन नहीं चाहते, खोल दिए जाएँ सच, हितैषी नहीं चाहते खुल जाएँ आवरण, पुरखे नहीं चाहते, इतिहास की नींवें उछाल दे उनकी हड्डियों का चूरा, स्त्रियाँ नहीं चाहती वे अपमानित हो दुबारा, आज क्यों चाहेगा बीता हुआ कल।" दूसरा कारण है -- बहुत बड़ी संख्या में ग्रामीण महिलाओं का अशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर होना। परिणाम -- जागरूकता का अभाव। और तीसरा कारण है- न्याय प्रक्रिया में बहुत लंबा समय, ख़र्च, क़ानून की जटिल प्रक्रिया और फिर वहाँ भी भ्रष्टाचार, रिश्वतख़ोरी आदि।

हम सब स्त्री जीवन में लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित होते देखना चाहते हैं। उसे इंसान के रूप में पुरुष से सम्मानित होते देखना चाहते हैं। वह दुनिया की आधार शक्ति है। मानवीय समानता और क़ानून का शासन सभ्य समाज की पहचान होती है। स्त्रियाँ सहित पूरे हाशिये का समाज अपने सरोकारों के साथ जीवन के सभी स्तर पर संघर्ष कर रहा है और यह संघर्ष एक दिन अवश्य सफल होगा, ऐसा विश्वास है। आवश्यकता है सबके दृढ़-संकल्प और सहयोग की। शुभकामनाएँ।

❑

डॉ. विपिन कुमार सिंह

मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में कारपोरेट सामाजिक दायित्व

किसी भी व्यावसायिक संगठनों से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें मानव अधिकारों का सम्मान करना चाहिए। ऐसे संगठनों को सदैव मानव अधिकारों के प्रति सजग रहना चाहिए तथा मानव अधिकारों के उल्लंघन से बचना चाहिए। मानव अधिकार की रक्षा करना सभी की वैश्विक जिम्मेदारी है। मानव अधिकार की रक्षा के लिए पर्याप्त उपाय करने की आवश्यकता है। सभी व्यवसायिक संगठनों की जिम्मेवारी है कि वे मानव अधिकारों का समर्थन करें तथा इस हेतु योगदान दें। किसी भी व्यवसायिक संगठनों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य को कमज़ोर नहीं करना चाहिए। मानव अधिकार के संबंध में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रावधान किए गए हैं। मानव अधिकार की श्रेणी में क्या-क्या हो सकता है? इसकी समय समय पर समीक्षा करनी चाहिए। मानव अधिकारों की एक आधिकारिक सूची अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त मानव अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय विधेयक में निहित है। जिसके अंतर्गत मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा तथा नागरिक और राजनैतिक प्रसंविदा एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा आते हैं, जिसमें मानव अधिकारों के बारे में उल्लेख किया गया है, जिसका पालन करना हम सभी की वैश्विक जिम्मेदारी है।

इस संबंध में मानव अधिकारों का संरक्षण करने के लिए उद्योगों की यह जिम्मेदारी है कि वे मानव अधिकारों के प्रतिकूल प्रभावों को उत्पन्न करने से बचें। ऐसे व्यवसायों से अपेक्षा की जाती है कि वे मानव अधिकार के प्रतिकूल होने वाले प्रभावों को रोकने अथवा कम करने की कोशिश करें। मानव अधिकार का दायित्व कंपनियों के आकारों के समानुपाती होता है, जितना बड़ा कंपनी का आकार होता है, उतनी बड़ी उसकी जिम्मेदारी होती है। कंपनी को विनियमित करने वाले पूर्व के क़ानूनों को मानव अधिकारों के उल्लंघन हेतु जिम्मेदार बताना ग़लत नहीं होगा। उस समय ऐसी कंपनियों का एक मात्र उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना होता था जो कि मानव अधिकार के ठीक विपरीत था। किंतु बीसवीं शताब्दी के पश्चात एक अच्छा परिवर्तन हुआ और परिणाम यह हुआ कि जो कंपनियाँ सिर्फ पैसे कमाने की प्रतियोगिता करती थी, उनका समाज से कोई सरोकार नहीं होता था। वे अंतरराष्ट्रीय व्यापार योजनाओं आदि के माध्यम से समाज और व्यापार के बीच एक स्वस्थ गठबंधन करने लगी और यह महसूस किया कि विश्व के मानव समाज के कल्याण और उत्थान के लिए कंपनियों

को जिम्मेदारी लेने की ज़रूरत है। कंपनियाँ समाज से धन अर्जन करती हैं इसलिए एक स्वस्थ वातावरण और बेहतर जीवन स्तर हेतु दायित्व एवं जिम्मेदारी भी रखती हैं।

वर्तमान समय में यह अवधारणा लगभग समाप्ति की ओर है कि किसी भी मानव अधिकार के लिए केवल राज्य ही जिम्मेदार है। चूँकि कंपनी समाज का ही एक अंग है इसलिए समाज का अभिन्न अंग होने के कारण मानव अधिकार के लिए वे भी जिम्मेदार हैं। कंपनियों का दायित्व है कि वे मानव अधिकार की सुरक्षा के लिए समाज का समर्थन करे। इस हेतु कारपोरेट सामाजिक दायित्व की अवधारणा की उत्पत्ति हुई।

कारपोरेट सामाजिक दायित्व के साथ मानव अधिकार की अवधारणा का उदय : कारपोरेट सामाजिक दायित्व की अवधारणा समाज की भलाई के लिए उत्पन्न हुई। इसमें यह अपेक्षा की जाती है कि कंपनियों का उद्देश्य केवल लाभ कमाने के लिए नहीं होना चाहिए। कारपोरेट सामाजिक दायित्व में कंपनियाँ सामाजिक भलाई के कार्य को आगे बढ़ाने का कार्य करती है। यह दायित्व ऐसे समाज के लाभ के लिए किया जाता है जो समाज ऐसे कंपनियों के संचालन से वातावरण अशुद्धि आदि के माध्यम से प्रभावित होती है। यह कहना अनुचित न होगा कि कारपोरेट सामाजिक दायित्व मुख्य रूप से उद्यमों और व्यवसायों द्वारा मानव समाज और वैश्विक दुनिया के साथ संबंध बनाए रखने के लिए किया जाता है।

कारपोरेट सामाजिक दायित्व केवल इतना तक ही सीमित नहीं है, अपितु समाज के ज़रूरतों एवं बदलती वैश्विक प्रबृत्तियों के साथ-साथ विकसित हो रहा है। पूर्व में केवल शीर्ष स्तर की कंपनियाँ अर्थात् केवल बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करती थी, जिससे कि व्यवसायिक लाभ एवं व्यवसाय का दायरा बढ़ाया जा सके। किंतु समय परिवर्तित होने के साथ ही कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा में बृद्धि हो चुकी है। इसलिए प्रत्येक स्तर की कंपनियाँ सामाजिक दायित्वों को पूरा करने से नहीं चूक रही हैं, क्योंकि ऐसी अवधारणा सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण के उद्देश्यों को ध्यान में रखती है इसे ही अंग्रेजी में 'ट्रिपल बाटम लाइन' भी कहा जाता है। कारपोरेट सामाजिक दायित्व का विशेष महत्त्व इसलिए भी है कि क्योंकि इस अवधारणा के माध्यम से कंपनियाँ अपने ब्रांड की छवि चमकाने का एक सुनहरा अवसर प्राप्त करती हैं।

मानव अधिकार पर कारपोरेट सामाजिक दायित्व का प्रभाव

कारपोरेट सामाजिक दायित्व की बढ़ती विचारधारा और मानव जीवन के साथ-साथ अधिकारों पर इसके प्रभाव को समझने के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पर्यावरण आदि कारकों को जानना आवश्यक है। सामाजिक कारकों के अंतर्गत शोषण के विरुद्ध अधिकार, श्रमिक अधिकार -- जैसे काम के बदले उचित वेतन, पोषणीय विकास, उपभोक्ता संरक्षण आदि आते हैं। आर्थिक कारकों के अंतर्गत उत्पादन, निवेश, छूट/सब्सिडी, दान आदि आते हैं। राजनीतिक कारकों के अंतर्गत भ्रष्टाचार, राजनीतिक दबाव, नौकरशाही, सरकारी संगठनों आदि का दबाव

आता है। इसी प्रकार पर्यावरणीय कारकों के अंतर्गत पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि आते हैं जो कि कारपोरेट सामाजिक दायित्व के कार्य तंत्र को प्रभावित करते हैं। शीर्ष कंपनियों की बढ़ती संख्या कारपोरेट दायित्व के अवसर को समझती हैं तथा ऐसे दायित्व के अंतर्गत मानव अधिकार का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

मानव अधिकार संरक्षित करने के प्रमुख दृष्टांत

सुरक्षित कार्यस्थल : एक कंपनी या व्यवसाय के मालिक या प्रबंधक की कई जिम्मेदारियाँ होती हैं, जैसे कार्य स्थल पर उनसे नैतिकता का ध्यान रखते हुए व्यवहार करना, शोषण से रक्षा करना आदि भी मानव अधिकार के अंतर्गत आता है। कंपनियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कार्यस्थल सुरक्षित व अनावश्यक ख़तरों से मुक्त हों। उदाहरण के लिए सुरक्षा गार्डो को आवश्यक सुरक्षा उपकरणों से सुसज्जित रखना मानव अधिकार की रक्षा करना ही है। बीमारी से बचाना एवं चोटों से रक्षा करना आदि। यदि कंपनी का कार्य ख़तरनाक है तो लैब, रसायन आदि से संरक्षण का उपाय करके मानव अधिकार की रक्षा की जा सकती है।

शीघ्र एवं उचित भुगतान : किसी भी कंपनी द्वारा अपने कर्मचारियों की वेतन या मज़दूरी में देरी से भुगतान उन्हें तनाव में ला सकती है अथवा उनके घर परिवार की दैनिक हालात को मुश्किल में डाल सकती है। अतः इन छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखकर मानव अधिकार की रक्षा की जा सकती है।

भेदभाव से परे होना : किसी भी कंपनी को लिंग, जाति, धर्म आदि के भेदभाव को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि यह भी मानव अधिकार का एक प्रकार से उल्लंघन ही है। किसी भी व्यवसाय में लिंग आदि के आधार पर भेदभाव का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

समान कार्य के लिए समान वेतन : किसी भी कंपनी में समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत का पालन किया जाना चाहिए, क्योंकि इसका उल्लंघन मानव अधिकार का उल्लंघन है। इस संबंध में पुरुष और स्त्री कर्मचारियों के बीच भेदभाव मानव अधिकार का घोर उल्लंघन होता है।

रोजगार संबंधी जिम्मेदारी : प्रत्येक कंपनी की यह जिम्मेदारी है कि चूँकि वे समाज की सहायता से ही अपना व्यवसाय करती है, लाभ कमाती हैं अतएव ऐसी कंपनियों को संबंधित क्षेत्र में रोज़गार भी देने की जिम्मेदारी निभानी चाहिए एवं उसे अपनी क्षमता के अनुसार कर्मचारियों की नियुक्ति करनी चाहिए तथा अच्छे से प्रबंधन का कार्य करना चाहिए।

दासता और बलात् श्रम से मुक्ति : अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के साथ ही बलात् श्रम अंतरराष्ट्रीय लगाव का विषय रहा है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने यह अंगीकार[1] किया है कि बलात् श्रम को समाप्त किया जाना चाहिए, यह मानव अधिकार के विरुद्ध है।

बिना भुगतान के कार्य लेना या स्वेच्छा के विरुद्ध कार्य लेना बलात् श्रम के साथ-साथ मानव अधिकार का भी उल्लंघन है।[2]

सामाजिक सुरक्षा का दायित्व : एक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का भी अधिकार है।[3] वर्तमान समय में व्यवसाय संघ राज्य के समान भागीदारी करता है, अतएव उनकी भी नैतिक जिम्मेदारी है कि वे सामाजिक सुरक्षा के कर्त्तव्य का पालन करें।

शिक्षा व संस्कृति की जिम्मेदारी : एक व्यक्ति को शिक्षा एवं संस्कृति का मानव अधिकार है।[4] एक कंपनी का भी यह कारपोरेट सामाजिक दायित्व है कि वह समाज में शिक्षा एवं संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए अपने अर्जित कोष का सदुपयोग करे।

मानव अधिकार संरक्षण हेतु प्रमुख क़ानून

मानव अधिकार का संरक्षण हेतु प्रमुख क़ानूनों का उल्लेख किया जाना समीचीन है जिसके अंतर्गत मानव समाज का विकास व कल्याण किया जा सकता है जिसमें सिविल एवं राजनैतिक अधिकार, आर्थिक और सामाजिक अधिकार, मानव अधिकार की सार्वभौमिक उद्घोषण, विधि का शासन और समुदायों का अधिकार सम्मिलित है। जिसके परिप्रेक्ष्य में कारपोरेट संस्थाएँ कारपोरेट सामाजिक दायित्व के अंतर्गत मानव अधिकार को बनाए रखने का प्रयास करती हैं।

सिविल एवं राजनैतिक अधिकार : सिविल एवं राजनैतिक अधिकार वे हैं जो राज्य अथवा किसी निजी या सार्वजनिक संस्था अथवा संगठन के विरुद्ध जीवन, स्वतंत्रता एवं सम्मान के अधिकार का संरक्षण करते हैं। सिविल और राजनैतिक अधिकारों में विभेद किया जा सकता है यथा जो अधिकार व्यक्ति के जीवन व स्वतंत्रता के संरक्षण एवं उपयोग से संबंधित है, वे सिविल या नागरिक अधिकार हैं परंतु वे अधिकार जिनके परिणामस्वरूप वह अपने देश की सरकार में भागीदार बनता है, जैसे मतदान का अधिकार, चुनाव लड़ने का अधिकार, लोकपद धारण करने का अधिकार, सरकार की आलोचना करने का अधिकार आदि राजनैतिक अधिकार माना जाता है। नागरिक और राजनैतिक अधिकार परम्परागत अधिकार होते हैं। इन्हें नकारात्मक अधिकार भी कहे जाते हैं क्योंकि इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए राज्यों को सकारात्मक कार्यवाही की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः इसे प्रथम श्रेणी के अधिकार भी कहते हैं। इन्हें अहस्तक्षेपी अधिकार भी कहा जाता है। इन जिम्मेदारियों के निर्वहन में जब कारपोरेट को लाया जाता है तो वे मुख्य रूप से समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की स्वतंत्रता, सुरक्षा, यौन उत्पीड़न आदि के विरुद्ध सुरक्षा के कार्य में सम्मिलित होते हैं। उदाहरण के लिए 'हाटरफ़्लाई' जैसी कुछ बड़ी-बड़ी कंपनियाँ महिलाओं की सुरक्षा को ध्येय बनाती हैं और उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए कार्यक्रम करती हैं यहाँ तक कि ऐसी कंपनियाँ ऐसी यौन उत्पीड़न की शिकार महिलाओं का उपचार तक प्रदान करने में अग्रसर रहती हैं। इसी प्रकार पर्यावरण जैसे मानव अधिकार को उपलब्ध कराने के अनुक्रम में कुछ कंपनियाँ जैसे -- कोका कोला अथवा जॉनसन एंड जॉनसन कंपनियाँ प्रदूषण कम करने एवं ग्रीन हाउस गैसों

के उत्सर्जन को कम करने हेतु कृत संकल्प हैं तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करोड़ों रुपए कारपोरेट सामाजिक दायित्व के रूप में निवेश करती हैं।

सामाजिक और आर्थिक अधिकार : इस सामाजिक और आर्थिक अधिकार के अंतर्गत सकारात्मक अधिकार आते हैं जो कुछ कार्य किए जाने की अपेक्षा करते हैं, इसलिए ऐसे अधिकार सकारात्मक अधिकार कहे जाते हैं जैसे -- आवास का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, सुरक्षा का अधिकार, विकास का अधिकार, जीवन स्तर को उपर उठाने के लिए पर्याप्त कार्य किए जाने का अधिकार आदि। अर्थात् इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए राज्यों को सकारात्मक कार्यवाही की आवश्यकता होती है। इन्हें कार्यक्रमिक अधिकार भी कहा जाता है। यह द्वितीय श्रेणी का अधिकार होता है तथा हस्तक्षेपी अधिकार कहलाता है। इसमें जितने भी विकास की बातें की गई हैं वे राज्य से अपेक्षित हैं किंतु अब वर्तमान दौर बदल चुका है इसलिए जो कंपनियाँ ऐसी जनता या उपभोक्ता से अपना विकास करती हैं उसके लिए अब उनका भी दायित्व इसलिए बनता है क्योंकि एक राज्य का विकास करने में कंपनियाँ सरकारों से कंधा से कंधा मिलाकर चलती हैं अतः उनका भी दायित्व है कि वे कारपोरेट सामाजिक दायित्व के तहत लोगों के सामाजिक और आर्थिक उन्नति में योगदान दें। यह प्रायः देखा भी जा रहा है कि कतिपय कंपनियाँ ऐसा कर भी रही हैं और छोटे अथवा बड़े पैमाने पर सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करती हैं। इस अनुक्रम में गुगल कंपनी जो कि मुख्य इंटरनेट सर्च कंपनी है, उसने पर्यावरण के अनुकूल कार्य में सक्रिय योगदान दिया है। इसी प्रकार फाइजर जैसे कंपनियों ने समाज को संक्रामक रोगों से मुक्ति के लिए अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन किया है। इसके अतिरिक्त अडानी जैसी कंपनियाँ रोज़गार को बढ़ावा देने में भी योगदान करती रही हैं।

मानव अधिकारों का सार्वजनिक घोषणा-पत्र : मानव अधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा यह कहता है कि ''समाज के प्रत्येक व्यक्ति और अंग की जिम्मेदारी है कि वह इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के लिए, सम्मान को बढ़ावा देने और उनकी सार्वभौमिक और प्रभावी मान्यता और पालन को सुरक्षित करने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रगतिशील उपायों द्वारा प्रयास करे।'' निगम किसी भी समाज के महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं इसलिए कारपोरेट सामाजिक दायित्व के अंतर्गत जिम्मेदारी भी रखते हैं।

विधि का शासन : विधि का शासन एक अच्छे लोकतंत्र का सूचक है। एक लोकतंत्र में विधि का शासन ही सामाजिक उन्नति का मूल मंत्र है। निष्पक्ष न्याय क़ानून के शासन का महत्त्वपूर्ण अंग है। विधि के शासन के अभाव में पोषणीय अथवा सतत विकास नहीं हो सकता है। आज रोटी और दाल के मुकाबले सुरक्षा और व्यापार को प्राथमिकता दी जा रही है। विधि का शासन में राज्य से सरकारी अधिकारियों द्वारा किए जा रहे शोषण से मुक्ति और सामाजिक सुरक्षा को प्राथमिकता दी जा रही है। भ्रष्टाचार, नौकरशाही एवं राज्य की मनमानी गतिविधियों के विरुद्ध कारपोरेट सामाजिक दायित्व के अंतर्गत कंपनियाँ सक्रिय योगदान दे रही

हैं और ऐसी अवैध गतिविधियों के विरुद्ध मुहिम भी छेड़ने का कार्य करती हैं जो कि एक राष्ट्र के लिए शुभ संकेत है।

समुदायों का अधिकार : समुदायों के अधिकार से अभिप्रेत ऐसे समूह जो एक समान ज़रूरतों के लिए दूसरे पर आश्रित हैं। इसके लिए उस समुदाय विशेष के नेता या प्रतिनिधित्व करने वालों पर दायित्व होता है जो इनके बृद्धि और विकास के लिए कार्य करते हैं। कंपनियों के कारपोरेट सामाजिक दायित्व के माध्यम से भी ऐसे समुदायों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त होता है जिसमें ऐसी कंपनियाँ ऐसे समुदायों के विकास एवं कल्याग के लिए योगदान करती हैं। ऐसी विशिष्ट कंपनियों ऐसे विशेष समुदायों के लिए रोज़गार का सृजन करती हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका के फ़्लॉवर वैली में स्थित शेल फाउंडेशन और मार्क्स एंड स्पेंसर आदि कंपनियों ने कारपोरेट सामाजिक दायित्व वाली परियोजनाओं के अंतर्गत विभिन्न समुदाय के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रारंभिक शिक्षा केंद्रों की स्थापना आदि के द्वारा विभिन्न समुदायों की स्थिति सुधारने के लिए प्रयासरत है।

भारत में स्थिति : कंपनी अधिनियम, 2013 के निर्माण के समय निर्माताओं ने कारपोरेट सामाजिक दायित्व के संदर्भ में बहस की, क्योंकि वे इस दायित्व के माध्यम से कंपनियों को एक नई दिशा प्रदान करना चाहते थे। कंपनी अधिनियम, 2013 के पूर्व कारपोरेट सामाजिक दायित्व के संदर्भ में कोई भी प्रावधान उपलब्ध नहीं थे। अब कारपोरेट सामाजिक दायित्व कारपोरेट संघ का एक मौलिक कार्य बन गया है। कारपोरेट जगत ने यह अनुमान लगाया है कि उनके व्यवसाय द्वारा ग्राहकों के सामाजिक, पर्यावरण और आर्थिक कल्याण पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भारत में उच्च स्तर की कंपनियाँ जैसे टाटा, रिलायंस, अडानी, बिड़ला आदि कंपनियाँ कारपोरेट सामाजिक दायित्व के अंतर्गत मानव अधिकार का ध्यान रखते हुए भारी मात्रा में निवेश कर रही हैं। भारत में कंपनी अधिनियम, 2013 के अंतर्गत प्रत्येक कंपनी जिसकी वार्षिक शुद्ध आय 5 करोड़ रुपए है अथवा उसका 500 करोड़ उसकी कंपनी की शुद्ध सम्पत्ति है अथवा 1000 करोड़ का वार्षिक कारोबार करती है तो ऐसी कंपनियों का दायित्व है कि वे तीन या अधिक निदेशेकों वाले बोर्ड की एक कारपोरेट सामाजिक दायित्व वाली समिति का गठन करेगी जो यह सुनिश्चित करेगी कि कंपनी वर्तमान वित्तीय वर्ष के पिछले तीन वर्षों के दौरान अर्जित औसत शुद्ध लाभ का कम-से-कम दो प्रतिशत कारपोरेट सामाजिक दायित्व वाली गतिविधियों के अंतर्गत ख़र्च करे। कारपोरेट सामाजिक दायित्व की मात्रा का निर्धारण किसी विशेष वर्ष की लेखा पुस्तकों के अंत में खातों को अंतिम रूप देने के बाद ही सुनिश्चित किया जा सकता है।[5] कारपोरेट सामाजिक दायित्व का प्रावधान उन कंपनियों पर लागू नहीं किया जा सकता है जो तीनों मानदंडों पर खरा नहीं उतरते हैं -- अर्थात् न तो उनका औसत मूल्य 500 करोड़ हो, न तो उनका वार्षिक लाभ 5 करोड़ हो और न ही 1000 करोड़ का वार्षिक व्यापार हो।[6] जहाँ कहीं तीन वार्षिक लाभ का सीएसआर रिपोर्ट ग़लत पाई जाती है वहाँ न्यायाधिकरण ने ऐसे रिपोर्ट को पुनः जारी करने का निर्देश दिया है।[7] भारत में कारपोरेट सामाजिक दायित्व

में नवीनतम संशोधन भी किए गए हैं। 22 जनवरी, 2021 को सीएसआर नियम 2014 के द्वारा आवश्यक संशोधन किया गया है। सीएसआर का मानव अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है, उदाहरण के लिए कोविड 19 के प्रभाव को कम करने के लिए और टीकाकरण आदि में योगदान हेतु सीएसआर की गतिविधियाँ अच्छा प्रभाव रखती हैं। सीएसआर नीतियों का व्यावहारिक दृष्टि में मानव अधिकार क्षेत्र में सकारात्मक बदलाव देखने को मिला है। सीएसआर नीतियाँ अभी भी भारत में पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं हैं, इसका कारण यह है कि कंपनियों के पास संसाधन होने के पश्चात भी वर्तमान समस्या के वास्तविक कारण से अनभिज्ञ हैं। सिर्फ पैसे ख़र्च करना ही कंपनियाँ कारपोरेट सामाजिक दायित्व मानती हैं, जबकि पैसे से इतर समस्या का समाधान करने की आवश्यकता भी है। इसके अतिरिक्त कंपनियाँ अपने सही खातों एवं शुद्ध लाभों को छिपाते हुए 2 प्रतिशत का योगदान करती है। वर्तमान समय में धारा 135, कंपनी अधिनियम, 2013 में संशोधन की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई निगम नोटबुक बनाने में लगा है, तो वह कुछ स्टॉक वंचित छात्रों को वितरित कर सकता है, यदि कोई कंपनी सैनिटरी नैपकिन बना रही है, तो वह कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में वितरित कर सकती है आदि। कंपनियों द्वारा सीएसआर जनादेश से बचने की प्रथाओं की कड़ाई से जांच की जानी चाहिए और उन्हें दंडित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

कारपोरेट सामाजिक दायित्व की अवधारणा का मानव अधिकार के मुद्दे पर अवलोकन करने के बाद यह कथन ग़लत नहीं होगा कि सीएसआर दुनिया भर में विख्यात हो रही है, तथा सारी दुनिया इसे सकारात्मक ढंग से स्वीकार कर रही है। वैश्वीकरण के संदर्भ में कंपनियाँ लाभ कमाने के साथ-साथ मानव अधिकार के प्रति गंभीर हो रही हैं। कंपनियाँ कारपोरेट सामाजिक दायित्व के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण में योगदान दे रही हैं जो कि प्रमुख मानव अधिकार है। वर्तमान समय में कारपोरेट संघ सामाजिक दायित्व के अंतर्गत मानव अधिकार के अनुक्रम में लोगों के काम के अधिकार को बनाए रखने में अपनी भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। इसी के साथ काम के न्यायोचित अनुकूल वातावरण के अधिकारों का निर्वहन कर रही हैं। उन्हें सामाजिक सुरक्षा का अधिकार दे रही हैं, लोगों के परिवार को संरक्षण और सहायता देकर मानव अधिकार की रक्षा का कार्य कर रही हैं। मानवों की भूख मिटाकर पर्याप्त जीवन स्तर दे रही हैं। उनके शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न के विरुद्ध प्रयासरत हैं। मानवों के शिक्षा व संस्कृति के अधिकार का संरक्षण कर रही है, पर्यावरण संरक्षण का कार्य एवं दिव्यांगों के पुनर्वास का कार्य, बच्चों के खेलकूद का सामान एवं प्रांगण मुहैया करा रही हैं, प्यासों के लिए निःशुल्क प्याऊ की व्यवस्था करके मानव अधिकार का संरक्षण करने का सुखद प्रयास कर रही हैं। इसके अतिरिक्त कामगारों का संरक्षण एवं उनके परिवार के देखभाल का भी प्रबंध करके मानव अधिकार संरक्षण का कार्य कर रही हैं।

व्यापारिक गतिविधि में कंपनियों के संदर्भ में विधायिका और कार्यपालिका को और अधिक सख़्त होने की आवश्यकता है। अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार क़ानून समाज के सतत विकास को सुनिश्चित करने और किसी भी निगम के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए पर्याप्त है। ये विभिन्न उपकरण इस तथ्य के प्रमाण हैं कि मानव अधिकार क़ानून सीएसआर गतिविधियों को बढ़ावा देने के प्रति सतर्क हैं। एक राज्य के भीतर विभिन्न कंपनियों द्वारा सीएसआर नीति के सख़्त प्रवर्तन से निपटने के लिए कोई साधन नहीं है। यह राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत प्रवर्तन तंत्र के साथ बेहतर और संपूर्ण सम्मेलन की माँग करता है। समाज को संतुष्ट करने के लिए कंपनियों को समाज के कल्याण और विकास के लिए एड़ी चोटी का जोर लगाना होगा, उनके मानव अधिकार की रक्षा करनी होगी तथा उनके मानव अधिकार के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करना होगा। जिस प्रकार राज्यों को नीतिगत सुसंगतता की दिशा में कार्य करना चाहिए, उसी प्रकार व्यावसायिक उपक्रमों को भी मानव का सम्मान करने के लिए उनकी जिम्मेदारी के बीच सुसंगतता के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है। अंत में यह कहना उचित है कि मानव अधिकार के अनुक्रम में कारपोरेट सामाजिक दायित्व अब तक सकारात्मक रहा है।

❑

संदर्भ

1. बलात् और बाध्यकारी श्रम से संबंधित अभिसमय, 1930
2. दीनानाथ बनाम भारत संघ 1999(1) एसएलजे एस.सी. 180
3. अनुच्छेद 22, मानव अधिकार की सार्वभौमिक उद्घोषणा, 1948
4. अनुच्छेद 26 एवं अनुच्छेद 27, मानव अधिकार की सार्वभौमिक उद्घोषणा, 1948
5. संजय श्रृगारपरे बनाम मैसर्स हीरा पॉवर एंड स्टील लिमिटेड सी.पी. नंबर 2727/441/एनसीएलटी/एमबी/एमएएच/2018
6. बिलफिंगर नियो स्ट्रक्टो प्रा. लिमिटेड बनाम एन/ए नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल, एससीसी ऑनलाइन एनसीएलटी 108, सीपी नंबर 54/441/एनसीएलटी/एमबी/एमएएच/2018. (2019)
7. टेक्नीकलर इंडिया (प्रा.) लिमिटेड बनाम कंपनी रजिस्ट्रार 2020 (7) टीएमआई 423।

ज्योत्सना श्रोत्रिय

मानव अधिकार और अल्पसंख्यक : भारत में चुनौतियाँ

''हम सभी जानते हैं कि समस्याएँ क्या हैं और हम सभी जानते हैं कि हमने हासिल करने का वादा किया है। अभी और घोषणाओं या वादों की ज़रूरत नहीं है बल्कि पहले से किए गए वादों को पूरा करने के लिए कार्रवाई की ज़रूरत है।"

-- कॉफी आनन (पूर्व महासचिव, संयुक्त राष्ट्र)

सभी मनुष्य गरिमा और अधिकारों में स्वतंत्र और समान पैदा होते हैं। मानव अधिकार क़ानून जैसे कि राष्ट्रीय या जातीय, धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों पर घोषणा, असहिष्णुता के सभी रूपों के उन्मूलन पर घोषणा और धर्म या विश्वास के आधार पर भेदभाव, और मानव पर विश्व सम्मेलन में की गई प्रतिबद्धताएँ, वियना में अधिकार, कोपेनहेगन में सामाजिक विकास के लिए विश्व शिखर सम्मेलन, बीजिंग में महिलाओं पर विश्व सम्मेलन और अल्पसंख्यकों के मानव अधिकारों की गारंटी देते हैं।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 29 इस प्रावधान द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करता है कि किसी भी नागरिक एवं नागरिकों के समूह को एक अलग भाषा लिपि या संस्कृति रखने का अधिकार है।

अल्पसंख्यक अधिकार सामान्य व्यक्तिगत अधिकार हैं जो नस्लीय, जातीय, वर्गीय, धार्मिक आधार पर सदस्यों पर लागू होते हैं। भाषाई या लिंग और यौन अल्पसंख्यकों और किसी भी अल्पसंख्यक समूह को दिए गए सामूहिक अधिकार। बहुमत के जनसांख्यिकीय प्रभुत्व के कारण अल्पसंख्यकों को सरकार से सुरक्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि यह चुनाव के लोकतांत्रिक पैटर्न में राजनीतिक शक्ति प्राप्त करता है।

अल्पसंख्यकों को अक्सर भेदभाव और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है और नागरिकता होने के बावजूद वे अपने मानव अधिकारों तक पहुँच हासिल करने के लिए संघर्ष करते हैं। उनकी नागरिकता छीनने से इंकार करना उनकी भेद्यता को कम करने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है। यदि अल्पसंख्यकों को नागरिकता से वंचित किया जाता है तो उन्हें अनिवार्य रूप से राष्ट्रीय या जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा में स्थापित अल्पसंख्यक अधिकारों सहित उनके मूल अधिकारों और स्वतंत्रता के संरक्षण से वंचित कर दिया जाता है।

अल्पसंख्यकों को दुनिया के हर हिस्से में उनके समाजों की समृद्ध विविधता के साथ देखा जा सकता है। एक व्यक्ति की चिंता की पहचान निर्धारक होनी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र मुख्य रूप से चार श्रेणियों पर ध्यान केंद्रित करता है। 1992 की घोषणा में राष्ट्रीय, जातीय, धार्मिक और भाषाई। ये श्रेणियाँ निश्चित नहीं हैं, बल्कि संभावित रूप से अतिव्यापी हैं। अल्पसंख्यकों को सभी मानव अधिकारों का समान रूप से उपभोग करने का अधिकार है। अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे में, विशेष रूप से, अल्पसंख्यकों के रूप में अस्तित्व की सुरक्षा, ग़ैर-भेदभाव, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में प्रभावी भागीदारी, अपने स्वयं के संघों के रख-रखाव के निर्णय लेने में प्रभावी भागीदारी। संयुक्त राष्ट्र के इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हम अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार मानकों के प्रचार और कार्यान्वयन के माध्यम से विविधता को अपनाते हैं।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण के प्रावधानों का उल्लेख नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध के अनुच्छेद 27 और बाल अधिकारों पर सम्मेलन के अनुच्छेद 30 के तहत किया गया है। राष्ट्रीय या जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा एक दस्तावेज़ है जो आवश्यक मानक प्रदान करता है और अल्पसंख्यकों से संबंधित अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए उचित विधायी और अन्य उपायों को अपनाने में राज्यों को मार्ग-दर्शन प्रदान करता है। ग़ैर-भेदभाव और समानता ऐसे स्तंभ हैं जो सभी प्रमुख मानव अधिकार संधियों का आधार बनाते हैं। मौलिक मानव अधिकार और अल्पसंख्यकों की क़ानूनी सुरक्षा ऐसे सिद्धांत हैं जो नस्ल, रंग, धर्म, भाषा, राष्ट्रीयता और जातीयता या कामकाजी वंश के आधार पर भेदभाव को रोकते हैं। इन दो सिद्धांतों का पालन करके अल्पसंख्यकों द्वारा निर्णय लेने में प्रभावी भागीदारी के अधिकार सहित कई मानव अधिकारों को सुरक्षित किया जा सकता है।

भारत में मानव अधिकारों की चिंता

भारत सबसे शक्तिशाली विकासशील देशों में से एक है। इस उभरते हुए औद्योगीकरण राज्य को दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य के रूप में एक प्रमुख दर्ज़ा प्राप्त है। राष्ट्रीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित लोकतांत्रिक आदर्श सभी नागरिकों के लिए उनकी सामाजिक और जातिगत संबद्धता के बजाय समानता पर केंद्रित है। अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ की गई हिंसा भेदभाव का एक रूप है और इसका अभ्यास समाज में नया नहीं है।

अंतरराष्ट्रीय सरकारों और मानव अधिकार संगठनों ने भारत में मानव अधिकारों के उल्लंघन के बारे में चिंता जताई है। हाल के वर्षों में भारत में कई मानव अधिकारों का उल्लंघन हुआ। कहा जाता है कि नागरिकता संशोधन अधिनियम और जम्मू-कश्मीर में संवैधानिक स्वायत्तता को हटाने से कुछ समूहों की सुरक्षा के बारे में चिंता। धार्मिक अल्पसंख्यकों सहित मानव अधिकार प्रभावित हुए हैं।

नागरिकता (संशोधन अधिनियम) का परिचय

भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के बारे में कई बार सवाल उठा है। भारतीय संसद ने दिसंबर 2019 में नागरिकता (संशोधन) अधिनियम पारित किया। यह कुछ धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए फास्ट ट्रैक नागरिकता प्रदान करता है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार कार्यालय ने इस अधिनियम को 'मौलिक रूप से भेदभावपूर्ण प्रकृति' के रूप में वर्णित किया। इस अधिनियम के पारित होने के कारण पूरे भारत में बड़े पैमाने पर विरोध हुआ। पुलिस और प्रदर्शनकारी के बीच हुई हिंसक झड़प में कई लोग घायल हो गए।

जम्मू-कश्मीर में संवैधानिक स्वायत्तता को हटाया जाना

अगस्त, 2019 में भारत सरकार ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को रद्द कर दिया। इस प्रकार जम्मू और कश्मीर राज्य से संवैधानिक स्वायत्तता को हटा दिया गया।

इसी अवधि के दौरान, भारत सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य की संवैधानिक स्वायत्तता को रद्द करने के बाद, हज़ारों लोगों को उनके परिवारों को सूचित किए बिना मनमाने ढंग से हिरासत में लिया गया था। कई हैबियस कॉर्पस याचिकाएँ अदालत में उनके परिवारों द्वारा जानकारी माँगने के लिए भरी गई थीं।

धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ अन्य घटनाएँ

2020 में भारत में ईसाइयों के ख़िलाफ़ कई अपराधों का उल्लेख किया गया। 2021 में प्रकाशित क्रिश्चियन एडवोकेसी ग्रुप की रिपोर्ट के अनुसार --

''शहरी और ग्रामीण भारत में रहने वाले कई ईसाई और मुस्लिम समुदाय जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष कर रहे हैं।''

अल्पसंख्यकों की समस्याएँ

भारत में अल्पसंख्यकों द्वारा सामना की जाने वाली तीन मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं --

पहचान : अल्पसंख्यकों को हर जगह पहचान के मुद्दों का सामना करना पड़ता है जो बहुसंख्यक समुदाय के साथ समायोजन की समस्या पैदा करता है।

सुरक्षा : अल्पसंख्यकों के समाज में कम संख्या में रिश्तेदार होते हैं इसलिए वे अपनी जीवन, संपत्ति और भलाई के बारे में असुरक्षा महसूस करते हैं। एक समाज में अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यक समुदायों के बीच संबंध अधिक सौहार्दपूर्ण नहीं होते हैं।

समानता : अल्पसंख्यक समुदाय के साथ जब भेदभाव होता है तो वह विकास के अवसरों के लाभ से वंचित रह जाता है।

भारत में धर्म एक जटिल परिघटना है, भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है लेकिन यहाँ धर्मनिरपेक्षता की एक बड़ी समस्या है। पिछले दशकों से मुस्लिम और ईसाई में धर्मांतरण एक बहुत ही विवादास्पद मुद्दा है। भारत सरकार ने विशेष रूप से भारत में मुस्लिम समुदाय द्वारा

सामना की जाने वाली समस्याओं की जाँच और विश्लेषण करने के लिए मार्च, 2005 को समिति गठित की थी।

अन्य चिंताएँ जो उठाई गई हैं

कई संगठनों ने अन्य घटनाओं के बारे में आवाज़ उठाई है। अप्रैल, 2021 में अंतरराष्ट्रीय धार्मिक स्वतंत्रता रिपोर्ट पर अमेरिकी आयोग ने धार्मिक अल्पसंख्यकों पर हमलों के कारण भारत को 'विशेष चिंता का देश' के रूप में नामित करने का अनुरोध किया। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत सरकार ने हिंदू राष्ट्रवादी नीतियों को बढ़ावा दिया है जिसके परिणामस्वरूप धार्मिक स्वतंत्रता का व्यवस्थित और गंभीर उल्लंघन हुआ है। अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण संबंधी संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं --

अनुच्छेद 14 क़ानून के समक्ष समानता का प्रावधान करना है -- यदि कोई ऐसा कार्य करता है जो क़ानूनी रूप से उचित नहीं है तो क़ानून सभी के साथ समान व्यवहार करता है और समान जिम्मेदारियाँ देता है।

अनुच्छेद 29, अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण

(1) भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग की अपनी एक अलग भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे उसके संरक्षण का अधिकार होगा।

(2) किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर राज्य द्वारा संचालित या राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30 शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यकों का अधिकार।

(1) सभी अल्पसंख्यकों, चाहे वे धर्म या भाषा पर आधारित हों, को अपनी पसंद के शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा। (1ए) खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित और प्रशासित किसी शैक्षणिक संस्थान की किसी भी संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण के लिए प्रदान करने वाला कोई भी क़ानून बनाने में, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि इस तरह के क़ानून के तहत निर्धारित या निर्धारित राशि ऐसी संपत्ति का अधिग्रहण ऐसा है जो उस खंड के तहत गारंटीकृत अधिकार को प्रतिबंधित या निरस्त नहीं करेगा।

(2) राज्य शैक्षिक संस्थानों को सहायता प्रदान करने में, किसी भी शैक्षणिक संस्थान के ख़िलाफ़ इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि यह अल्पसंख्यक के प्रबंधन के अधीन है, चाहे वह धर्म या भाषा पर आधारित हो।

भारत के संविधान का अनुच्छेद 29 इस अधिकार की गारंटी देता है, जबकि अनुच्छेद 30 अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के लिए अल्पसंख्यकों के हितों

की रक्षा करता है।

अनुच्छेद 38, में यह प्रावधान है कि लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए राज्य एक सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित करेगा।

(1) राज्य लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए प्रभावी ढंग से सुरक्षित और संरक्षित करने का प्रयास करेगा क्योंकि यह एक सामाजिक व्यवस्था हो सकती है जिसमें न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, राष्ट्रीय जीवन के सभी संस्थानों को सूचित करेगा।

(2) राज्य, विशेष रूप से, आय में असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा, और न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले या विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के समूहों के बीच भी स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को खत्म करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 347, राज्य की आबादी के एक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा से संबंधित विशेष प्रावधान

इस निमित्त की गई माँग पर, यदि राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट हैं कि किसी राज्य की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा उनके द्वारा बोली जाने वाली किसी भी भाषा के उपयोग को उस राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त करने की इच्छा रखता है, तो वह निर्देश दे सकता है कि ऐसी भाषा को भी आधिकारिक रूप से मान्यता दी जाए। पूरे राज्य या उसके किसी भाग में ऐसे उद्देश्य के लिए मान्यता निर्दिष्ट कर सकता है।

अनुच्छेद 350, शिकायतों के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा

प्रत्येक व्यक्ति किसी भी शिकायत के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी भी अधिकारी या प्राधिकरण को संघ या राज्य में उपयोग की जाने वाली किसी भी भाषा में, जैसा भी मामला हो, प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने का हकदार होगा।

अनुच्छेद 350(ए), प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधा

भाषाई अल्पसंख्यक समूहों से संबंधित बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करने के लिए प्रत्येक राज्य और प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण का यह प्रयास होगा; और राष्ट्रपति ऐसा जारी कर सकते हैं; किसी भी राज्य को निर्देश देता है कि वह ऐसी सुविधाओं के प्रावधान को हासिल करने के लिए आवश्यक या उचित समझे।

अनुच्छेद 350(बी), भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी

भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाने वाला एक विशेष अधिकारी होगा।

विशेष अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस संविधान के तहत भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों से संबंधित सभी मामलों की जाँच करे और उन मामलों पर राष्ट्रपति को ऐसे अंतराल पर रिपोर्ट करे, जैसाकि राष्ट्रपति निर्देशित कर सकते हैं, और

राष्ट्रपति द्वारा ऐसी सभी रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा और संबंधित राज्यों की सरकार को भेजा जाएगा।

अल्पसंख्यकों के राष्ट्रीय आयोग (NCM) अधिनियम, 1992 के प्रावधानों के अनुसार मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी (पारसी) को अल्पसंख्यक के रूप में अधिसूचित किया गया है। अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग 5 जुलाई, 1992 को एक वैधानिक आयोग की स्थापना की गई थी।

निष्कर्ष

सरकार ने दिसंबर 2019 में एक नागरिकता क़ानून पारित किया जो मुसलमानों के साथ भेदभाव करता है और पहली बार धर्म को नागरिकता का आधार बनाता है। अगस्त 2019 में सरकार ने जम्मू-कश्मीर की संवैधानिक स्वायत्तता को भी रद्द कर दिया और मानव अधिकारों के उल्लंघन पर रोक लगा दी। भारत सरकार ने रोहिंग्या मुस्लिम शरणार्थियों को म्यांमार निर्वासित करने की धमकी दी और उनके जीवन और सुरक्षा को जोखिम में डाल दिया।

मुस्लिम पशु व्यापारियों पर मुकदमा चलाने के लिए राज्य गोहत्या के ख़िलाफ़ क़ानूनों का उपयोग करते हैं। तीन भाजपा शासित राज्यों ने धर्मांतरण विरोधी क़ानून पारित किया जो हिंदू महिलाओं से शादी करने वाले मुस्लिम पुरुषों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाता है।

ये उल्लेखित कार्यवाहियाँ घरेलू क़ानून और अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकारों के ख़िलाफ़ हैं जो नस्ल, जातीयता या धर्म के आधार पर मानव अधिकारों की रक्षा करते हैं और भेदभाव पर रोक लगाते हैं। भारत सरकार धार्मिक और अन्य अल्पसंख्यक आबादी की रक्षा करने और उनके ख़िलाफ़ भेदभाव और हिंसा के लिए जिम्मेदार लोगों पर मुकदमा चलाने के लिए बाध्य है। सरकार को भेदभावपूर्ण क़ानूनों और नीतियों को वापस लेना चाहिए और अल्पसंख्यकों के पक्ष में न्याय सुनिश्चित करना चाहिए।

❑

राधा बिश्नोई

भारत में न्यायपालिका और मानव अधिकार

मानव अधिकार और उच्चतम न्यायालय

मानव अधिकार ऐसे अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त हो जाते हैं। मानव प्राणी (Human being) होना ही काफी है, भले ही उसकी राष्ट्रीयता, धर्म, लिंग, वर्ग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, योग्यता चाहे कुछ हो। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में मानव अधिकारों का परिभाषित किया गया है। इस अधिनियम की धारा 2(डी) के अनुसार, ''मानव अधिकार का अर्थ व्यक्ति की जीवन, स्वतंत्रता, समानता व गरिमा से संबंधित उन अधिकारों से है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत है या अंतरराष्ट्रीय करारों में वर्णित है और भारत में न्यायालय द्वारा प्रर्वतनीय है।'' इन अधिकारों के बिना व्यक्ति की स्थिति जानवर की भाँति हो जाएगी'' इस प्रकार मानव अधिकारों से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास संभव है। मानव होना ही काफी नहीं अधिकार और स्वतंत्रताए होना भी आवश्यक है, इनके बिना मानव अपनी मानवता से ही वंचित हो जाता है। समाज, सरकार व अन्य संगठन तभी सफल माने जा सकते हैं जब वे अधिकारों की रक्षा कर पाएँ। मानव अधिकारों की रक्षा से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा जुड़ी है। जर्मनी, इटली, नाज़ीवाद, फासीवाद और अन्य कम्युनिस्ट सरकारों ने जब-जब व्यक्ति के अधिकारों की अवहेलना की, तब-तब उन्हें जनता के विरोध और अन्य राष्ट्रों से युद्ध का सामना करना पड़ा। ऐसी सरकारें जड़ से नष्ट हो गई। एक कल्याणकारी राज्य सिद्धांत के अनुसार राज्य का पहला कर्त्तव्य जनता का कल्याण और अधिकारों की सुरक्षा करना है।[2] वर्तमान समय में राज्य के साथ-साथ न्यायपालिका और न्यायाधीशों का भी प्राथमिक कर्त्तव्य है, मानव अधिकारों की रक्षा करना क्योंकि यह क़ानून का विषय है कि किसी के साथ अन्याय न हो।

मानव अधिकार की रक्षा में उच्चतम न्यायालय का योगदान

भारतीय संविधान के तहत न्याय पालिका मानव अधिकार और मूल अधिकारों की प्रहरी है। उच्चतम न्यायालय ने मानव अधिकारों के हनन के कई मुद्दों पर संज्ञान लिया है और वह अपने निर्णयों और आदेशों से मानव अधिकारों की हमेशा रक्षा करता आया है और आगे भी करेगा। राज्य में जैसे-जैसे विकास होने लगा और सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन होने लगे,

वैसे-वैसे मानव अधिकारों का हनन भी ज्यादा होने लगा। कई बार सरकारें ही ऐसे नियम घोषणाएँ कर देती है जिससे कहीं-न-कहीं मानव अधिकारों का उल्लघंन होता है तब अंतिम समय-समय पर मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए नए-नए क़दम उठाए गए हैं। मानव अधिकारों को लागू करने के लिए व्यक्तियों को बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छ और उत्प्रेषण के तहत व्यक्ति सीधे उच्चतम न्यायालय में जाकर अधिकारों की माँग कर सकता है, साथ ही जनहित याचिकाओं के माध्यम से उच्चतम न्यायालय व कई उच्च न्यायालयों में मानव अधिकारों की सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण निर्णय देकर आमजन के अधिकारों को सुरक्षित महसूस करवाया है। साथ ही जनता के प्रति जवाबदेही का उल्लघंन करने वाले अधिकारियों व राजनेताओं को जुर्माने से दंड दिया है। महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के विरुद्ध चल रही जाँच में शिथिलता नहीं बरतने के लिए निर्देश प्रमुख जाँच एजेसियों को दिए हैं। उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर सी.बी. आई ने पंजाब में बड़े पैमाने पर गायब हुए व्यक्तियों के बारे में जाँच शुरू की थी।

मानव अधिकार हनन के मुद्दों को न्यायिक सक्रियता ने प्रबलता से उठाया है।[3]

1. **सुनिल बग्गा बनाम दिल्ली प्रशासन**[4] इस मामले में आजीवन कारावास का दंड भुगत रहे क़ैदी के साथ जेल रक्षा द्वारा क्रूर व अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध एक अन्य क़ैदी ने पत्र द्वारा न्यायालय को सूचना दी। न्यायालय ने पत्र को रिट मान कर जेल प्राधिकारियों के विरुद्ध निर्देश जारी किया कि बंदियों क साथ अमानवीय व्यवहार न किया जाए। साथ ही, पुलिस किसी व्यक्ति को हथकड़ी नहीं लगा सकती और अगर ऐसा होता है तो यह पूरी तरह से अवैधानिक है इस प्रकार क़ैदियों के मानव अधिकार की रक्षा में उच्चतम न्यायालय ने और भी कड़े निर्णय दिए।

2. **बिहार लीग सपोर्ट सोसाइटी, नई दिल्ली बनाम भारत के मुख्य न्यायमूर्ति**[5] उच्चतम न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की पूर्णपीठ ने यह निर्णय दिया कि लोकहित वाद सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य समाज के कमज़ोर वर्ग की सहायता करना है। उच्चतम न्यायालय ने लोकहित वाद के द्वारा जन साधारण के अधिकारों की रक्षा में महत्त्वपूर्ण निर्णय दिए है जिनमें बिहार में अंधे बनाए गए क़ैदियों को मुक्त करने, आगरा के नारी निकेतन में स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार के निवारण करने, जेलों में बाल क़ैदियों को अमानवीय एवं अनैतिक व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने, बंबई के फुटपाथ पर रहने वालों के निवास की व्यवस्था करने के लिए राज्य को निर्देश देने, रिक्शा चालकों, खानों में काम करने वाले कार्मिकों, बेरोजगारों को नौकरी दिलाने वाली योजनाओं को राज्य द्वारा कार्यान्वय कराने के लिए पर्यावरण संरक्षण तथा अन्य विशेष मुद्दो पर महत्त्वपूर्ण आदेश दिए।

3. **लक्ष्मीकांत पांडेय बनाम भारती संघ**[6] एक अधिवक्ता ने पत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय को आगाह किया कि कुछ सामाजिक और स्वैच्छिक संस्थाए भारतीय बच्चों को विदेशियों के गोद लिए जाने के लिए विदेश भेजने का काम कर रही है तथा गोद लेने के बहाने किशोरावस्था के बालकों को बिना उचित देखभाल के भिक्षावृत्ति या वेश्यावृति करने के लिए बाध्य कर रही

हैं जो मानव अधिकारों का खुला उल्लघंन है तब न्यायाधिपति श्री भगवती ने उन सिद्धांतों को विहित किया जिसके अनुसार ही विदेशियों द्वारा भारतीय बच्चों को गोद लिया जाए। साथ ही सरकार व अन्य संस्थाओं को अनुच्छेद 15 (3), 39 (स), (क) के अंतर्गत बालकों के कल्याण के लिए कार्य करना संवैधानिक कर्त्तव्य माना।

4. **नेशनल फेडरेशन ऑफ ब्लाइंड बनाम संघ लोक सेव आयोग**[7] इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि शारीरिक रूप से विकलांग (अंधे) व्यक्तियों को भारतीय सिविल सेवा परीक्षा में बैठने का हक है, उनकी सुविधा के लिए सरकार को उन्हें ब्रेल लिपी या सहायक लेखक के साथ परीक्षा में बैठन की सुविधा भी उपलब्ध करवायी जानी चाहिए।

5. **मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य**[8] उच्चतम न्याायालय ने शिक्षा के अधिकार पर विस्तृत निर्वचन कर शिक्षा की आवश्यकता व उपयोगिता पर सरकारों का ध्यान खीचा और प्राईवेट शिक्षा संस्थानों में मनमर्जी से वसूली जाने वाले केपिटेशन फीस पर रोक लगाने और शिक्षा के व्यवसायीकरण के विरुद्ध निर्णय दिया जो कि ऐतिहासिक है।

6. **परमानंद कटारा बनाम भारत संघ**[9] उच्चतम न्यायालय ने स्वास्थ्य के अधिकार को मानव अधिकार की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बता कर उसे अनुच्छेद 21 के अधीन सरकार और निजी डॉक्टरों को आदेशित किया कि घायल व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सा सहायता प्रदान करना पहला कर्त्तव्य होना चाहिए, उनके पश्चात् क़ानूनी प्रक्रिया का पालन करें क्योंकि क़ानूनी अड़चनों के कारण अनेक घायल व्यक्तियों की चिकित्सा के अभाव में मृत्यु हो जाना मानव अधिकारों का उल्लघंन है तो कतई बर्दास्त नहीं होगा।

7. **दिल्ली डेमोकेटिक वर्किंग वुमेन्स फोरम बनाम भारत संघ**[10] इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने महिलाओं के साथ बढ़ते हुए यौन अपराधों के प्रति गंभीर होकर निर्णय दिया कि ऐसे मामलो के शीघ्र परीक्षण तथा उन्हें प्रतिकर प्रदान करने एवं उनके पुर्नवास के लिए विस्तृत मार्गदर्शन सिद्धांत विहित किया।

8. **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य**[11] इस मामले में कार्यस्थल या श्रमजीवी महिलाओं के साथ काम के स्थान पर होने वाले यौन उत्पीड़न रोकने व अच्छा माहौल दिए जाने से संबधित उच्चतम न्यायालय ने मार्गदर्शक सिद्धांत दिए जिनकी पालना आवश्यक है।

9. **शक्ति वाहनी बनाम भारत संघ और अन्य**[12] उच्चतम न्यायालय ने खाप पंचायतों व अन्य ऐसी पंचायतें जो क़ानून का उल्लघंन करती हैं और विवाह को रोकती है, उन्हें अवैध ठहराते हुए कहा कि 'ऑनर किलिंग' के लिए हिंसा से संबंधित अपराध फास्ट ट्रेक कोर्ट के समक्ष पेश किए जाएँगे और दिन-प्रतिदिन उन्हें सुना जाएगा। अपराध के संज्ञान से 6 माह में कार्यवाही पूर्ण हो। खाप पंचायतें क़ानून हाथ में नहीं ले सकती।

10.**इंडियन यंग लॉयर्स एसोसिएश बनाम केरल राज्य**[12] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना कि सबरीमाला मंदिर में महिलाओं को वर्जित करने की प्रथा समानता, स्वतंत्रता और धार्मिक स्वतंत्रता के साथ-साथ अनुच्छेद 14, 15, 19 (1), 21 और 25 के मौलिक अधिकारों

का उल्लघंन करती है। उच्चतम न्यायालय ने सभी उम्र की महिलाओं को सबरीमाला मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति दी साथ यह स्पष्ट किया कि भक्ति को लैंगिक भेदभाव के अधीन नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर कई महत्त्वपूर्ण निर्णय देकर मानव अधिकारों की रक्षा करने का कार्य किया है, करता आ रहा है। बंधुओं मज़दूरों की विमुक्ति, पर्यावरण संरक्षण, पुलिस अभिरक्षा में क़ैदियों के साथ क्रूर व्यवहार से संरक्षण, बलात्कार से पीड़ित महिलाओ को प्रतिकर एवं पुनर्वास प्रदान करना, दिल्ली के नागरिकों को जल, बिजली उपलब्ध कराना, दिल्ली में बसो और अन्य वाहनों को सी.एन.जी. से चलाना, उत्तर प्रदेश में पंचायत और नगर निगमों का चुनाव कराना, डेंगू बीमारी से जनता को बचाने के लिए उचित उपचार का प्रबंध करने के लिए सरकार को आदेश देना[14] साथ ही कोरोना काल में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिये सुनवाई का आदेश, निर्भया केस के दोषियों की अर्जी ख़ारिज कर फाँसी पर लटकाने का आदेश, संवैधानिक मूल्यों व स्वतंत्रता की संरक्षण के लिए आदेश, देशभर के थानों में सीसीटीवी कैमरा लगाए जाने के निर्देश (2020), कोरोना काल में उच्चतम न्यायालय द्वारा टेस्ट फ्री करने, स्वास्थ्य का अधिकार मौलिक अधिकार बनाने और मज़दूरों को घर भेजने का आदेश ग़रीब जनता के लिए अहम साबित हुआ।

उच्चतम न्यायालय अपने अधिनस्थ न्यायालयों और अधिकरण, सरकार, कोई संस्था को मानव अधिकारों की पालना करने के लिए समय-समय पर निर्देशित करता है। साथ ही, भारत में रहने वाले बाहरी प्रवासियों, शरणार्थीयों के अधिकारों की रक्षा करता है। उच्चतम न्यायालय के आज तक के इतिहास में मानव अधिकारों की रक्षा के महत्त्वपूर्ण उपाय व निर्देशित करने के साथ-ही-साथ मानव अधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं को कठोर दंड से दण्डित भी किया है। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय द्वारा लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया गया है।

❑

डॉ. दुष्यंत कुमार एवं बृजेश कँवर

भारत में शिक्षा का अधिकार और मानव अधिकारों का विधिक विश्लेषण एवं न्यायपालिका की भूमिका

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, जिसे आर.टी.ई. के रूप में भी जाना जाता है, एक भारतीय क़ानून है जिसका उद्देश्य 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के सभी बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना है। अधिनियम को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 ए के तहत एक मौलिक अधिकार के रूप में पेश किया गया था जो शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में गारंटी देता है। आर.टी.ई. अधिनियम शिक्षा को एक बुनियादी मानव अधिकार के रूप में मान्यता देता है और मानव विकास को बढ़ावा देने और सामाजिक न्याय प्राप्त करने में शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करता है।

अधिनियम ग़ैर-भेदभाव के सिद्धांत को प्रतिष्ठापित करता है और यह अनिवार्य करता है कि किसी भी बच्चे को उनके लिंग, धर्म, जाति या आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा। यह अधिनियम शिक्षा के अधिकार के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने में सरकार, स्कूलों और माता-पिता के कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों को भी रेखांकित करता है। सरकार को हर पड़ोस में स्कूलों की स्थापना और रखरखाव और बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने की आवश्यकता होती है, जैसे शौचालय, पीने का पानी और बिजली। शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए स्कूलों को शिक्षक-छात्र अनुपात, बुनियादी ढाँचे और पाठ्यक्रम सहित कुछ मानदंडों और मानकों को बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने जनसंख्या के एक बड़े वर्ग, विशेष रूप से समाज के हाशिए और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों को शिक्षा तक पहुँच प्रदान करके भारत में मानव अधिकारों को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने देश में ड्रॉप-आउट दर को कम करने और समग्र साक्षरता दर में सुधार करने में भी मदद की है। हालाँकि, शिक्षा का अधिकार अधिनियम की शुरुआत के बावजूद, भारत अभी भी यह सुनिश्चित करने में चुनौतियों का सामना कर रहा है कि प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच हो। अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे, प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी और कम सीखने के परिणाम जैसे मुद्दे विशेष रूप से ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में बने हुए हैं। यह अधिनियम एक महत्त्वपूर्ण क़ानून है जो शिक्षा को मौलिक मानव अधिकार के रूप में मान्यता देता है और भारत में मानव अधिकारों को बढ़ावा

देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सरकार, स्कूलों और माता-पिता के बीच निरंतर प्रयासों और सहयोग की आवश्यकता होती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच हो।

अनुच्छेद 21ए : शिक्षा का अधिकार

शिक्षा शुरू में जो एक संवैधानिक अधिकार था, अब एक मौलिक अधिकार है। संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा अनुच्छेद 21(।) जोड़ा गया था। जिसके अनुसार राज्य 6 से 14 वर्ष तक आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करेगा।

2 दिसंबर, 2002 को संविधान में 86वाँ संशोधन किया गया था और इसके अनुच्छेद 21ए के तहत शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया।

इस मूल अधिकार के क्रियान्वयन हेतु वर्ष 2009 में निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम (Right of Children to Free and Compulsory Education Act) बनाया गया जो 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ था।

कौन से बच्चे 25 प्रतिशत आरक्षित सीटों के लिए आवेदन करने के पात्र हैं?

- अधिनियम निर्दिष्ट करता है कि मुफ़्त सीटों में प्रवेश बच्चों की दो श्रेणियों को दिया जाना चाहिए --
- **प्रथम** : 'वंचित समूह से संबंधित बच्चा' का अर्थ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक और

  शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या ऐसे अन्य समूह से संबंधित बच्चा है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लिंग या ऐसे अन्य कारकों के कारण नुकसान उठाता है, जैसाकि अधिसूचना द्वारा उपयुक्त सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है।
- **द्वितीय** : 'कमज़ोर वर्ग से संबंधित बच्चा' का अर्थ ऐसे माता-पिता या अभिभावक से संबंधित बच्चे से है, जिसकी वार्षिक आय अधिसूचना द्वारा उपयुक्त सरकार द्वारा निर्दिष्ट न्यूनतम सीमा से कम है;
- अलग-अलग राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने भी नियम जारी किए हैं जो पात्र बच्चों के लिए विस्तृत पात्रता, मानदंड और पारिवारिक आय सीमा निर्दिष्ट करते हैं।
- आम बोलचाल की भाषा में 25 प्रतिशत आरक्षित सीटों के लिए सभी पात्र बच्चों को 'आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग; (ईडब्ल्यूएस) से संबंधित भी कहा जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में, भारत में आर.टी.ई. से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण मामले सामने आए हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण मामले हैं --

उन्नी कृष्णन, जे.पी. और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1993)

यह मामला भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने वाला पहला मामला था। उच्चतम न्यायालय ने माना कि

शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार में निहित है और यह राज्य की जिम्मेदारी है कि वह सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करे।

मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992)

यह मामला पेशेवर कॉलेजों में प्रवेश के मुद्दे से संबंधित था और कहा गया था कि राज्य फीस का भुगतान करने में असमर्थता के आधार पर छात्रों को प्रवेश से इनकार नहीं कर सकता है। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि किसी भी नागरिक को शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है और राज्य का कर्त्तव्य है कि वह सभी को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करे।

राजस्थान के ग़ैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूल बनाम भारत संघ (2012)

यह मामला आर.टी.ई. अधिनियम, 2009 की वैधता से संबंधित है जो यह अनिवार्य करता है कि सभी ग़ैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूल समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के छात्रों के लिए अपनी सीटों का 25 प्रतिशत आरक्षित करें। उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम की वैधता को बरकरार रखते हुए कहा कि यह सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में एक सकारात्मक क़दम है।

राजस्थान के ग़ैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों के लिए सोसायटी बनाम राजस्थान राज्य (2012)

यह मामला आर.टी.ई. अधिनियम, 2009 के तहत समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के छात्रों के लिए सीटों के 25 प्रतिशत आरक्षण से भी संबंधित है। उच्चतम न्यायालय ने माना कि राज्य के पास शिक्षा को विनियमित करने की शक्ति है और यह अधिनियम शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और संचालन के अधिकार पर एक उचित प्रतिबंध है।

प्रमती एजुकेशनल एंड कल्चरल ट्रस्ट बनाम भारत संघ (2014)

यह मामला मेडिकल और डेंटल पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा (एनईईटी) की वैधता से संबंधित है। उच्चतम न्यायालय ने माना कि एनईईटी एक वैध प्रवेश परीक्षा है और प्रवेश प्रक्रिया में पारदर्शिता और योग्यता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

मॉडर्न स्कूल बनाम भारत संघ (2004) यह मामला विकलांग बच्चों के शिक्षा के अधिकार के मुद्दे से संबंधित था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि विकलांग बच्चों को किसी भी अन्य बच्चे के समान शिक्षा का अधिकार है और राज्य का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें शिक्षा तक पहुँचने के समान अवसर प्रदान करे।

टीएमए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002)

यह मामला निजी शैक्षणिक संस्थानों की स्वायत्तता के मुद्दे से संबंधित था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि निजी संस्थानों को अपने स्वयं के शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने

और चलाने का अधिकार है, लेकिन उन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए कुछ नियमों का पालन करना चाहिए कि वे विशुद्ध रूप से लाभ कमाने वाले उद्यम न बनें।

सारांश में, ये मामले भारत में शिक्षा के अधिकार के महत्त्व और इस अधिकार की रक्षा में न्यायपालिका की भूमिका को उजागर करते हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 और इसके विभिन्न प्रावधानों ने शिक्षा तक पहुँच में सुधार लाने और यह सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है कि कोई भी बच्चा पीछे न छूटे। हालाँकि, यह सुनिश्चित करने के लिए अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है कि भारत में हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति से संबंधित महत्त्वपूर्ण योजनाएँ

- **निष्टा योजना :** देश में शिक्षा का स्तर बढ़ाने और विकसित करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा एक विशिष्ट योजना शुरू की गई हैं, जिसका नाम है, निष्टा योजना। इस योजना के अंतर्गत पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक पढ़ाने वाले देश के सभी शिक्षकों को निःशुल्क प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा। इस प्रशिक्षण में शिक्षकों को शिक्षा की नई तकनीक की ट्रेनिंग दी जाएगी जिससे देश के बच्चों को बेहतर शिक्षा प्रदान की जा सकें और उनके उज्ज्वल भविष्य का निर्माण किया जा सके।
- **साक्षर भारत मिशन :** 8 सितंबर को अंतरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने महिलाओं को साक्षर करने के उद्देश्य से साक्षर भारत मिशन का शुभारंभ किया।
- **पढ़े भारत बढ़े भारत योजना :** 2014 में, मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी ने 'पढ़े भारत बढ़े भारत योजना' शुरू की थी, यह देशव्यापी कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान के तहत लागू किया गया। यह सामान्य रूप से देखा गया कि जिन बच्चों को अपनी प्रारंभिक शिक्षा के दौरान पढ़ने में मुश्किल होती है, वे अन्य विषयों में भी अच्छे नहीं होते हैं। इस कार्यक्रम के तहत, बच्चों को प्रथम व द्वितीय कक्षाओं में पढ़ने और लिखने के कौशल के साथ गणित कौशल में बेहतर बनाया जाएगा।
- **सर्व शिक्षा अभियान क्या है?** : यह भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है, जिसे 2001 में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण (Universalisation of Elementary Education (UEE)) को प्राप्त करने के लिए शुरू किया गया था। सर्व शिक्षा अभियान को क़ानूनी समर्थन तब प्रदान किया गया था जब 6-14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा को अनुच्छेद 21 ए के तहत भारतीय संविधान में एक मौलिक अधिकार बनाया गया था।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD), अब शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार (GoI) सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम का संचालन करता है और यह 2000-2001 से प्रचलन में है।
- **बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना :** बालिकाओं को सशक्त बनाने के लिए किए जा

रहे समन्वित प्रयासों के तहत महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय और मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने संयुक्त रूप से 22 जनवरी 2015 को बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ (बीबीबीपी) योजना की शुरूआत की। इस योजना को सबसे पहले देश के उन 100 जिलों में लागू किया गया जहाँ बालिकाओं का लिंग अनुपात न्यूनतम स्तर पर पहुँच चुका है। सबसे पहले 2011 की जनगणना के आधार पर प्रत्येक राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेशों में से बालिकाओं के न्यूनतम लिंग अनुपात वाले 100 जिलों का चयन पायलट जिलों के रूप में किया गया। हरियाणा में ओलंपिक कांस्य पदक विजेता साक्षी मलिक को अगस्त, 2016 में 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना का ब्रांड एंबेसडर बनाया गया।

- **नई शिक्षा नीति 2020 :** प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दे दी है जिससे स्कूली और उच्च शिक्षा दोनों क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर रूपांतरकारी सुधार के रास्ते खुल गए हैं। यह 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है और यह 34 साल पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई), 1986 की जगह लेगी. सबके लिए आसान पहुँच, इक्विटी, गुणवत्ता, वहनीयता और जवाबदेही के आधारभूत स्तंभों पर निर्मित यह नई शिक्षा नीति सतत विकास के लिए एजेंडा 2030 के अनुकूल है और इसका उद्देश्य 21वीं सदी की ज़रूरतों के अनुकूल स्कूल और कॉलेज की शिक्षा को अधिक समग्र, लचीला बनाते हुए भारत को एक ज्ञान आधारित जीवंत समाज और ज्ञान की वैश्विक महाशक्ति में बदलना और प्रत्येक छात्र में निहित अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाना है।

मानव अधिकारों के संदर्भ में भारतीय समीक्षा

भारत ने कई अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार संधियों और सम्मेलनों की पुष्टि की है, जिन्हें इसके घरेलू क़ानूनों और क़ानूनी प्रणाली में शामिल किया गया है। भारत में अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकारों से संबंधित कुछ प्रमुख प्रावधान हैं --

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूडीएचआर) : भारत ने यूडीएचआर की पुष्टि की है जो नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की एक विस्तृत शृंखला निर्धारित करता है जो मानव गरिमा और कल्याण के लिए आवश्यक हैं। यूडीएचआर एक क़ानूनी रूप से बाध्यकारी संधि नहीं है, लेकिन इसने नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (आई.सी.सी.पी.आर.) और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (आई.सी.ई.एस.सी.आर.) सहित अन्य अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार उपकरणों के विकास को प्रभावित किया है।

नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (ICCPR) : भारत ने 1979 में प्ब्ब्च्त पर हस्ताक्षर किए और 1979 में इसकी पुष्टि की। आई.सी.सी.पी.आर. नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की एक विस्तृत शृंखला निर्धारित करता है जिसमें जीवन का अधिकार,

व्यक्ति की स्वतंत्रता और सुरक्षा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, विधानसभा की स्वतंत्रता और निष्पक्ष परीक्षण का अधिकार शामिल है। भारत ने इनमें से कुछ प्रावधानों को अपने घरेलू क़ानूनों में शामिल किया है।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (आई.सी.ई.एस. सी.आर.) : भारत ने 1979 में आई.सी.ई.एस.सी.आर. पर हस्ताक्षर किए और 1979 में इसकी पुष्टि की। आई.सी.ई.एस.सी.आर. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की एक शृंखला निर्धारित करता है जिसमें काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य सेवा का अधिकार और आवास का अधिकार शामिल है। भारत ने इनमें से कुछ प्रावधानों को अपने घरेलू क़ानूनों में शामिल किया है जिसमें भारतीय संविधान भी शामिल है।

बाल अधिकारों पर कन्वेंशन (सीआरसी) : भारत ने 1990 में सीआरसी पर हस्ताक्षर किए और 1992 में इसकी पुष्टि की। सीआरसी बच्चों के अधिकारों को निर्धारित करता है जिसमें जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और हिंसा और शोषण से सुरक्षा का अधिकार शामिल है। भारत ने किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 सहित अपने घरेलू क़ानूनों में इनमें से कुछ प्रावधानों को शामिल किया है।

महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन (सीईडीएडब्ल्यू) : भारत ने 1980 में सीईडीएडब्ल्यू पर हस्ताक्षर किए और 1993 में इसकी पुष्टि की। CEDAW का उद्देश्य महिलाओं के ख़िलाफ़ भेदभाव को खत्म करना और जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ उनकी समानता को बढ़ावा देना है। भारत ने इनमें से कुछ प्रावधानों को अपने घरेलू क़ानूनों में शामिल किया है जिसमें घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 भी शामिल है।

सारांश में भारत के पास मानव अधिकारों की रक्षा और बढ़ावा देने के लिए एक मजबूत क़ानूनी ढाँचा है और इसने अपने घरेलू क़ानूनों और क़ानूनी प्रणाली में अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार मानदंडों और मानकों को शामिल करने के लिए क़दम उठाए हैं। हालाँकि, इन क़ानूनों को लागू करने और लागू करने में अभी भी चुनौतियाँ हैं, और कुछ क्षेत्रों में मानव अधिकारों का उल्लंघन जारी है।

❑

संदर्भ

1. टाइम्स ऑफ इंडिया : 25 प्रतिशत आर.टी.ई. सीटों के लिए प्रवेश प्रक्रिया
2. भारत का संविधान : पांडे और नरूला
3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (आर.टी.ई.)
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

डॉ. मीनाक्षी मीना

कार्यकारी महिलाओं में भूमिका द्वंद : समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रस्तावना : भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में लगभग आधी आबादी महिलाओं की है। किसी भी समाज के विकास की दर का अनुमान उस समाज की महिलाओं की स्थिति के आधार पर लगाया जाता है। वैदिक काल को महिलाओं का स्वर्ण युग काल कहा जाता था। उस समय स्त्री-पुरुषों में भेदभाव नहीं होता था। बाद में उत्तर वैदिक काल, मध्य-काल, मुगल काल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी शुरू हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व कई समाज-सुधार आंदोलन, महिला आंदोलनों आदि के कारण महिलाओं की स्थिति धीरे-धीरे मजबूत होने लगी।

पारंपरिक सोच के रूप में हमेशा से ही घर की जिम्मेदारी महिलाओं की रही है क्योंकि प्राचीन समय में महिलाएँ घर का काम करती थीं। बच्चे, बुजुर्गों की देखभाल करती थीं। आज चारदीवारी से बाहर निकल कर काम करती हैं तो भी घर की जिम्मेदारी उनके हिस्से में आती हैं। कामकाजी महिलाओं को परिवार और कार्य-स्थल पर दोहरी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कामकाजी महिलाओं को पुरुष की तुलना में दोगुना कार्य भी करना पड़ता है।

वर्तमान समाज में शिक्षा की वजह से महिलाओं की स्थिति आज शिखर को छू रही है। महिलाएँ आज आत्मनिर्भर बन रही हैं। पारिवारिक आर्थिक व्यवस्था में ही पुरुषों के समान भागीदारी निभा रही है। आज महिलाओं में शिक्षा के कारण आत्म-निर्भरता व आत्म-चेतना का विकास हुआ है। ''संविधान के अनुच्छेद 39(घ) में समान कार्य के लिए पुरुष एवं स्त्रियों को समान वेतन दिए जाने का प्रावधान किया गया है। इसमें यह कहा गया है कि राज्य अपनी नीति का विशिष्टतया इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो। समान कार्य के लिए समान वेतन संविधान की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है जिसने महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है।''[1]

अध्ययन की रूपरेखा

कार्यकारी महिलाओं के दोहरी भूमिका दायित्व की वजह से परिवार व कार्य-स्थल पर उनके समक्ष कई समस्याएँ सामने आती हैं और दोनों ही जगह उन्हें अपनी भूमिका में संतुलन बनाए रखना पड़ता है। इस जानकारी के लिए प्रस्तुत आलेख में अध्ययन के लिए हमने सरकारी, ग़ैर-सरकारी कार्यालयों में कार्यरत् 50 नौकरीपेशा महिलाओं (आयु 25 से 55 वर्ष) को उत्तरदाता के रूप में चयन करके साक्षात्कार-अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया है। प्रस्तुत

आलेख में यह जानकारी हासिल करने की कोशिश की गई है कि इन दोहरे भूमिका दायित्व की वजह से कहीं वे मानसिक विकारों, तनाव, अलगाववाद की स्थिति का शिकार तो नहीं हो रही है? क्या कार्यकारी महिलाएँ परिवार व कार्य-स्थल पर भूमिका सामंजस्य में संतुष्टि का अहसास करती है?

कार्यकारी महिलाएँ व भूमिका द्वंद

भूमिका द्वंद वह अवधारणा है जिसका सामाजिक मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों के द्वारा समस्याग्रस्त प्रस्थिति को समझने के लिए प्रयोग किया जाता है तथा जो कर्ता के द्वारा दो प्रस्थितियों को धारण करने के कारण उत्पन्न होता है। ये दशाएँ विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से उत्पन्न होती है जिसमें भूमिकाओं का निर्वाह किया जाता है जिसमें परिस्थितियों एवं संदर्भ महत्त्वपूर्ण होते हैं। कार्यकारी महिलाओं के संबंध में भूमिका द्वंद स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता दिखता है। घर से बाहर वेतन के काम करने की नई भूमिका के साथ ही परिवार में पत्नी एवं माता की प्रस्थापित भूमिका से सामंजस्य स्थापित करना अत्याधिक कठिन चुनौती है। सामंजस्य के इस संघर्ष में तनाव उत्पन्न होना अवश्यंभावी है और यही भूमिका द्वंद की अनुभूति उत्पन्न करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज, भारतीय अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास ने भारत के सामाजिक परिवेश को जड़ तक प्रभावित किया है। शिक्षित महिलाओं की स्थिति और प्रस्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है। परिवार की बंद चारदीवार से लाभप्रद रोज़गार की ओर उन्मुख महिलाओं की बड़ी संख्या, आज रोज़गार से जुड़े आँकड़ों में अपनी पुरज़ोर उपस्थिति प्रदर्शित कर रही है। इतिहासकार डी.एम. केटलबी ने कहा है कि "विश्व युद्ध के दौरान काफी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और महिलाओं को व्यवसाय या पेशों में आर्थिक अवसर प्राप्त हुए, साथ ही राजनीतिक एवं विधिक प्रस्थिति और सामाजिक स्वतंत्रता काफी हद तक प्राप्त हुई जिससे महिला के जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है।"[2] रोज़गार के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की उल्लेखनीय भागीदारी ने महिलाओं की प्रस्थिति को बढ़ाया और उनके आत्म विश्वास को भी दृढ़ बनाया है, परंतु साथ ही कार्य-स्थल एवं परिवार के बीच सामंजस्य हेतु संघर्ष को भी जन्म दिया। कार्य-स्थल एवं परिवार दोनों ही जगहों पर निर्धारित प्रस्थिति के अनुरूप भूमिका निर्वाह के बीच सामंजस्य की कमी ही भूमिका द्वंद का प्रभावी कारण है। यह भूमिका द्वंद असंतोष के साथ ही तनाव एवं दबाव उत्पन्न करता है जिससे मानव व्यवहार पर गंभीर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। भूमिका द्वंद सिर्फ कर्ता पर ही नहीं अपितु कर्ता से संबंधित सभी पक्षों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। परिवार में असंतोष, कलह, विघटन, अलगाव के साथ-साथ कर्ता को भी मानसिक रूप से प्रभावित करता है। स्पष्टतः भूमिका द्वंद असंतोष का परिणाम ही माना जाता है जो विभिन्न परिवेश द्वारा निर्धारित भूमिकाओं के उत्तरदायित्व के निर्वहन में कठिनाई एवं संघर्ष की अनुभूति से जुड़ा होता है।

टालकाटपार्सन्स ने कहा है कि "भूमिका द्वंद जो भूमिका प्राप्त किए हैं एवं जो उस संगठन

के सदस्य हैं, दोनों पर बुरा प्रभाव डालता है साथ ही एवं विघटनात्मक एवं तनावयुक्त परिवेश को जन्म देता है। एक व्यक्ति के द्वारा भूमिका द्वंद कुछ उद्देश्यों को त्यागने एवं समर्पण को कम करने का परिणाम होता है जो विशेष दशा में भूमिका के साथ संतुलन को घटाता है। अथवा वैयक्तिक चिन्ता एवं दबाव को बढ़ाता है।"[3]

कार्यकारी महिलाओं को भूमिका द्वंद का अनुभव तब होता है जब वे दोनों भूमिकाओं के निर्वहन में समय की बाध्यता से प्रभावित होती है। समय के प्रबंधन में संघर्ष, उनके असंतोष को बढ़ा देती है। भट्टी एवं भट्टी ने कहा है कि "कार्यकारी महिलाओं में समय की सीमा ही सदा भूमिका द्वंद को पैदा करती है।"[4]

कार्यकारी महिलाओं में भूमिका द्वंद के विभिन्न आयाम

प्रोमिला कपूर ने कहा है कि "कार्यकारी महिला घर और बाहर के उत्तरदायित्वों एवं दोहरी भूमिकाओं को संतोषजनक ढंग से निर्वहन की अपेक्षा वे स्वयं से करती है, साथ ही समाज भी उनसे यही आशा करता है। परंतु कार्यक्षेत्र एवं परिवार के बीच सामंजस्य बैठाने की कठिन चुनौती में वे यह अनुभव करती हैं, कि वह दोनों से किसी एक की उपेक्षा कर रही हैं। सकारात्मक अथवा नकारात्मक भावना जिसे एक महिला कार्य करने के स्थान से अनुभव करती है, वह पारिवारिक संबंधों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। इसी तरह सकारात्मक अथवा नकारात्मक घरेलू परिवेश, बाहर के कार्य-स्थल पर महिलाओं की भूमिका को प्रभावित करते हैं। दोनों भूमिकाओं में किसी स्तर पर तनाव, दबाव एवं संघर्ष भूमिकाओं के निर्वहन को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है जो निश्चित रूप से भूमिका द्वंद्व को प्रभावी बनाता है।"[5]

वास्तविकता यह है कि एक कार्यकारी महिला अपने कार्य-स्थल की भूमिका, परिवार की भूमिका, वैवाहिक जीवन की भूमिका, माँ की भूमिका आदि भूमिकाओं के मध्य पेंडुलम की तरह झूलती रहती है। जब वह अपने घर पर होती है, तो कार्यालय के कार्य से चिंतित रहती है, जब कार्यालय में होती है, घर, परिवार, पति, बच्चों के प्रति चिंतित रहती है। यह असंतोष उनकी कार्यक्षमता एवं उत्पादकता को प्रभावित करता है। यही भूमिका द्वंद पेशे के क्षेत्र में उसकी प्रोन्नति एवं विकास में ह्रास प्रदर्शित करता है।

दूसरा प्रमुख कारण बच्चों की देखभाल से जुड़ा है। काम करने वाली महिलाओं की भावना स्वभावतः बच्चों की उपेक्षा से प्रभावित होती है। माताएँ अपने बच्चों के मानसिक एवं शारीरिक विकास के ऊपर पूर्ण ध्यान देना अपना कर्त्तव्य समझती हैं। यदि वे ऐसा करने में स्वयं को अक्षम पाती हैं तो अपराध बोध से पीड़ित हो उठती है। कार्यक्षेत्र के दबाव से कार्यकारी महिलाओं द्वारा बच्चों के प्रति पूर्ण समर्पण न होने का अपराध बोध भी भूमिका द्वंद्व को प्रभावित करता है।

तीसरा प्रमुख कारण वैवाहिक जीवन से सामंजस्य से जुड़ा है। प्रमिला कपूर का कहना है कि ''वैवाहिक सामंजस्य को वैवाहिक संबंधों के अभियोजन की स्थिति एवं परिवेश के रूप में समझा जा सकता है जो पति-पत्नी के मध्य उत्पन्न प्रवृत्ति के द्वारा जाना जाता है जिसे द्वंद्व उत्पन्न होना और समस्या का समाधान होना और वैवाहिक जीवन में एक-दूसरे के साथ

संतुष्टि एवं प्रसन्नता की अनुभूति के द्वारा इसका समाधान किया जाता है।"[6]

सरल शब्दों में कहा जाए तो परंपरागत रूप से भारतीय समाज में पति-पत्नी के बीच आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य करना पत्नी के ऊपर निर्भर करता है। इस सामंजस्य प्रक्रिया का आधा भाग समझौता से संबंधित है जो एक-दूसरे के प्रति अपनी आवश्यकता के त्याग से परिभाषित होता है। साथ ही पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं से वैवाहिक साम्यता बनाए रखने की अपेक्षा अधिक होती है। समाज द्वारा महिलाओं से वैवाहिक जीवन से संबंधित उत्तरदायित्व निर्वहन की अत्यधिक उपेक्षा ही कार्यकारी महिलाओं में तनाव एवं दबाव का कारण होता है।

चतुर्थ स्तर पर कार्य स्थल का परिवेश भी भूमिका द्वंद का जनक प्रतीत होता है। परंपरागत विचारों के अनुसार महिलाओं का श्रम विभाजन में विशिष्ट कार्य था जो सदैव घर की चारदीवारियों तक सीमित था। आज औद्योगिकीरण एवं वैश्वीकरण के चरम युग में भी कार्यकारी महिला प्रथमतः स्त्री के रूप में ही परिभाषित होती फिर कर्मचारी का दर्ज़ा मिलता है। उन्हें सिर्फ महिला समझना न उन्हें कुंठित करता है वरन् उनमें घृणा और ईर्ष्या पैदा करता है और यही परिवेश उन्हें अलगाव की ओर धकेलते हैं। उनकी क्षमता, प्रतिमा, ज्ञान, विश्वास और अनुभव को हाशिए पर रख उनका व्यक्तित्व निर्धारण करना उनमें कार्य के प्रति असंतोष एवं हीन भावना को प्रकट करता है। यही मनोवैज्ञानिक सोच भूमिका द्वंद का निर्धारण करती है।

कार्यकारी महिलाओं में भूमिका द्वंद के विभिन्न आयामों पर विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है जो दोनों प्रकार की भूमिकाओं की तीव्र अनुभूति से संबंधित है अर्थात् भूमिका द्वंद्व अनेक व्यक्तित्व के गुणों एवं सामाजिक, सांस्कृतिक दशाओं के समुच्चय का परिणाम है -- चूँकि भूमिका द्वंद महिलाओं के कार्य क्षमता (घरेलू एवं कार्य-स्थल) को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। अतः घर एवं कार्य-स्थलों के परिवेश में सकारात्मक परिवर्तन किए जाने आवश्यक है ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की कार्यक्षमता का प्रभावी प्रयोग किया जा सके।

कार्यकारी महिलाओं से पूछे गए प्रश्नों का प्रस्तुतीकरण

दोहरे भूमिका दायित्व की वजह से वे मानसिक विकारों, तनाव, अलगाववाद की स्थिति का शिकार तो नहीं हो रही है?

सारणी संख्या-1

क्रम सं.	महिला उत्तरदाताओं का जवाब	उत्तरदाताओं की आयु	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
1.	हाँ	25-40 वर्ष	27	54 प्रतिशत
2.	नहीं	40-55 वर्ष	16	32 प्रतिशत
3.	कुछ कह नहीं सकते	30-45 वर्ष	07	14 प्रतिशत
		कुल उत्तरदाता	**50**	**100 प्रतिशत**

सारणी संख्या 1 में उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त तथ्यों के अनुसार 32 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ जिनकी आयु 40 से 45 वर्ष थी उन्हें अपनी दोहरी भूमिका सामंजस्य की वजह से तनाव नहीं था। 54 प्रतिशत कार्यकारी महिलाएँ जिनकी आयु 25 से 40 वर्ष थी उन्हें अपनी दोहरी भूमिका दायित्वों के निर्वहन के कारण मानसिक परेशानियाँ एवं तनाव आदि से ग्रसित थी।

कार्यकारी महिलाएँ परिवार व कार्य-स्थल पर भूमिका सामंजस्य में संतुष्टि का अहसास करती है?

सारणी संख्या-2

क्रम सं.	महिला उत्तरदाताओं का जवाब	उत्तरदाताओं की आयु	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
1.	संतुष्ट	39-55 वर्ष	18	36 प्रतिशत
2.	असंतुष्ट	25-38 वर्ष	32	64 प्रतिशत
		कुल उत्तरदाता	**50**	**100 प्रतिशत**

सारणी संख्या 2 में प्राप्त तथ्यों के अनुसार 36 प्रतिशत कार्यकारी महिलाएँ (आयु 39-55 वर्ष) थी वे परिवार, कार्य-स्थल दोनों जगह पर अपने दायित्वों से संतुष्ट थी। 64 प्रतिशत कार्यकारी महिलाएँ (आयु 25 से 38 वर्ष) परिवार, कार्य-स्थल दोनों जगह में अपनी भूमिका निर्वहन से असंतुष्टि का अहसास करती थी।

निष्कर्ष

आज के आधुनिक औद्योगिक समाज में जहाँ स्त्रियों में शिक्षा के प्रति रुझान अत्यधिक गंभीर प्रदर्शित हो रहा है महिलाओं की एक बड़ी संख्या उपलब्ध कार्य बल के साथ जुड़ी है। भारतीय अर्थव्यवस्था में तीव्र गति से जुड़ रही हैं। परिवार के कठोर स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। समाज द्वारा भी महिलाओं के नौकरी के विरुद्ध अवरोध को समाप्त किया जा रहा है। कार्यकारी महिलाओं के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ रहा है। आज यदि निम्न आय समूह की कार्यरत महिलाओं के संदर्भ में देखा जाए तो जहाँ अतिरिक्त आय, परिवार के लिए अत्यंत आवश्यक है, महिलाएँ त्याग करने के प्रति तैयार रहती हैं क्योंकि ऐसी परिस्थिति में महिलाओं के समक्ष घरेलू एवं कार्य-स्थल की भूमिका का उच्च स्तर का बोध नहीं होता है।

अध्ययन में 32 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे अपने कार्यो की वजह से मानसिक तनाव, अलगाववाद की स्थिति में नहीं है। उसका कारण यह था कि उन महिलाओं को परिवार का कार्य-स्थल दोनों पर सहयोग मिल रहा था चाहे वह परिवार का हो या कार्य-स्थल पर साथियों का। वहीं 54 प्रतिशत महिलाएँ जिनकी आयु 25 से 40 वर्ष थी।

अपनी इस दोहरी भूमिका के कारण मानसिक परेशानियाँ, तनाव से ग्रसित पाया गया था क्योंकि परिवार वह कार्य-स्थल दोनों जगह पर वे अपना संपूर्ण नहीं दे पा रही थी। परिवार

में बच्चों को अधिक समय नहीं देने के कारण उनको कहीं-न-कहीं नकारात्मक, आलोचनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 64 प्रतिशत कार्यकारी महिलाएँ परिवार, कार्य-स्थल दोनों जगह अपनी भूमिका निर्वहन से असंतुष्टि थी। क्योंकि जब वह घर में रहती है तो उन्हें कार्य-स्थल के कार्य की चिंता रहती है और कार्य-स्थल पर उन्हें परिवार, बच्चों की जिम्मेदारियाँ की चिंता रहती है जिस वजह से वह दोनों जगह ही असमंजस, असंतुष्ट महसूस करती है। अध्ययन के दौरान कुछ महिलाएँ ऐसी भी थी, भूमिका के द्वंद की वजह से ही समय से पहले ही नौकरी से कार्यमुक्त हो गई ताकि वे तनाव और चिंता मुक्त जीवन जी सके।

भारत विकास रिपोर्ट-2017 में विश्व बैंक ने सुझाव दिया है कि "अर्थव्यवस्था में अधिक महिलाओं की भागीदारी से देश में दोहरे अंक की वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार हम महिलाओं की सुरक्षा और उसके सशक्तिकरण की कितनी ही बातें क्यों न करें मगर सच्चाई यह है कि 21वीं शताब्दी में भारत में महिलाओं की स्थिति में खास परिवर्तन नहीं आया है। भारत में उन महिलाओं को ज्यादा परेशानियों का सामना करना पड़ता है जो घर से बाहर निकलकर नौकरी करती हैं। सार्वजनिक स्थानों में यौन उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। वे हिंसा की भी शिकार होती है। इसके अलावा नौकरी करने के लिए महिलाओं को पति से इज़ाज़त लेनी पड़ती है।"[7]

सुझाव

आज के औद्योगिक समाज के भागती दौड़ती जिंदगी के बीच सरकार को भी इस संबंध में निरंतर समस्याओं के समाधान हेतु नई सोच के साथ आगे आने चाहिए ताकि कार्यकारी महिलाओं का नौकरी में बने रहना संभव हो सके एवं अधिक-से-अधिक आधी आबादी भारतीय अर्थ व्यवस्था में सम्मिलित हो और समतावादी समाज के लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक बनें। उच्च शिक्षा प्राप्त परिवार भी परंपरावादी विचारों में मुक्त होता है।

पति एवं परिवार के लोग घरेलू कार्य में सहयोग करे, बच्चों की जिम्मेदारी का सकुशल संपादन करे। पुरुष प्रधान संस्थाओं को महिलाओं के अबला होने के दृष्टिकोण से परे हट, यह सोच प्रदर्शित करनी होगी कि वे कर्मचारी (सहयोगी), पत्नी एवं माता के रूप में है तथा कार्यरत् महिलाओं का योगदान सामान्य रूप से राष्ट्र एवं विशेष रूप से परिवार के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक जीवन के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

दशात्मक एवं परिवेशात्मक स्तर पर कार्यकारी महिलाओं के प्रति घर एवं कार्य-स्थल दोनों की दशाओं में परिवर्तन लाना आवश्यक है ताकि उनका परिवेश तनाव मुक्त हो जिससे वे कुशल एवं सफल ढंग से कार्य संपादित कर सके। स्वतंत्रता के बाद "भारतीय संविधान में 'स्वतंत्रता और समानता' के सिद्धांत से प्रभावित होकर महिलाओं में जो नई-सोच, नई-चेतना पैदा हुई उसी ने महिलाओं को कामकाज करने के लिए उत्साहित किया महिलाओं को नौकरी करनी चाहिए या नहीं, यह बहुत पुराना विवाद है। इस पर आज तक कोई सर्वमान्य निर्णय

नहीं हुआ है, नहीं होगा। भविष्य में इस बारे में लोगों की क्या मान्यता होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि स्त्रियों को पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नौकरी अवश्य करनी चाहिए।"[8]

इसी प्रकार भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो भूमिका द्वंद्व के संदर्भ में घरेलू एवं बाहर के उत्तरदायित्व के बीच बाहर के कार्य को सदा गौड़ स्थान मिलता है। इस प्रकार इन विभिन्न परिवेश का विशिष्ट विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार की भूमिका द्वंद की मात्रा, कार्यकारी महिलाओं के दृष्टिकोण से प्रभावी दिखता है। जमीनी स्तर पर उतना प्रभावी नहीं है, क्योंकि वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में परंपरागत रूढ़िवादी परिवार की छवि उदारवादी होती जा रही हैं, परंतु अभी भी समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आवश्यक है।

❑

संदर्भ

1. बाबेल बसंतीलाल, संवैधानिक विधि नई चुनौतियाँ, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2013, पृ. 164
2. एन.डी, औद्योगिक एवं श्रम विधिशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2004, पृ. 647
3. टाल्काट पारसंस एंड एडवर्ड ए मिल्स, टुआर्डस ए जनरल थियरी ऑफ एक्शन, कैम्ब्रिज, हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस-1951
4. भट्टी तथा भट्टी, चेड, डमो ग्राफिक पोर्टेट ऑफ प्रोफेशनल वोमेन इम्प्लायड इन इंडिया, इन एजुकेटेड वोमेन इन इंडियन सोसायटी टुडे, टाटा मेक्ग्रा हिल, 1966
5. कपूर, प्रमिला मैरिज एंड वर्किंग वोमेन इन इंडिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1970
6. कपूर आर. रोलकन फ़्लिक्ट एमाँग इम्प्लाइड हाउस वाइफ, इंडियन जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशन वाल्यूम 5 (1)
7. रोकी कुमार, महिला सशक्तिकरण या महिलाओं पर काम का दोहरा बोझ, IN FOCUS Hindi, 22 December, 2017
8. शिला. सलूजा, कामकाजी महिला की समस्या एव समाधान, प्रकाशक पुस्तक महल, दिल्ली, 2001, पृ. 7